फरवरी, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

पी एल डी (सी. डी)-2-2019 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

फरवरी, 2019 अंक - 2

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

(2019) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website ⟹ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

Cover ii

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्‌वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्‌वारा पारित प्रतिवेद्‌य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैं, इस संपादकीय के माध्यम से आपका ध्यान राजभाषा अधिनियम की धारा 4 के उपबंधों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जिसके अधीन संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया जाता है । इस समिति में 30 सदस्य होते हैं, जिनमें से 20 लोक सभा और 10 राज्य सभा के सदस्य होते हैं । इस समिति के अध्यक्ष भारत सरकार के गृह मंत्री होते हैं । वर्तमान में, केन्द्रीय गृह मंत्री श्री राजनाथ सिंह इस समिति के अध्यक्ष हैं । इस समिति का कर्तव्य है कि वह संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करे और उस पर अपनी सिफारिश करते हुए राष्ट्रपति महोदय के समक्ष प्रतिवेदन करे । राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाएंगे और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएंगे । राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन पर राज्य सरकारों द्‌वारा व्यक्त किए गए मतों पर विचार करने के पश्चात् निर्देश दे सकेंगे और इस प्रकार से उनके द्‌वारा दिए गए निर्देश राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 के उपबंधों के असंगत नहीं माने जाएंगे । यहां पर मैं, यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हमारे संविधान के निर्माता राजभाषा हिंदी के प्रयोग, प्रचार और प्रसार के प्रति अत्यधिक सतर्क थे और वे नहीं चाहते थे कि हिंदी राजनीति का शिकार हो । इसीलिए यह व्यवस्था की गई कि संसदीय राजभाषा समिति अपनी सिफारिशें संसद् के पटल पर प्रस्तुत न करे बल्कि सीधे राष्ट्रपति महोदय के समक्ष प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत करे और राष्ट्रपति महोदय उन सिफारिशों को दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करवाएंगे ।

मैं, यहां पर आपका ध्यान राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 6 की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूं । इस धारा के अधीन किसी भी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से अपने राज्य में स्थित उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिंदी भाषा या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग

की जाने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है । इस प्रावधान के अधीन उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान में स्थित उच्च न्यायालयों में हिंदी का प्रयोग प्राधिकृत किया गया है । इसके अतिरिक्त किसी भी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग उस राज्य में स्थित उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनार्थ भी प्राधिकृत कर सकता है परंतु ऐसी स्थिति में हिंदी या उस राज्य की राजभाषा में पारित निर्णय, डिक्री या आदेश के साथ अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी लगाया जाएगा । राजभाषा अधिनियम की धारा 7 के अधीन यह भी प्रावधान किया गया है कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान में स्थित उच्च न्यायालय निर्णय डिक्री या आदेश पारित करने के लिए हिंदी का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत होंगे और इन उच्च न्यायालयों द्वारा हिंदी में पारित निर्णय, डिक्री या आदेश को प्राधिकृत और अधिप्रमाणित माना जाएगा । साथ ही यह अपेक्षा भी की गई है कि ऐसे निर्णयों, डिक्रियों या आदेशों के साथ अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी संलग्न किया जाएगा और इससे हिंदी में दिए गए निर्णय का अधिप्रमाणित या प्राधिकृत स्वरूप समाप्त नहीं होगा ।

यहां पर मैं, आपका ध्यान संसदीय राजभाषा समिति द्वारा महामहिम राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत प्रतिवेदन के पांचवें खंड में की गई सिफारिश की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूं, जिसके द्वारा उच्चतम न्यायालय से यह अपेक्षा की गई है कि उच्चतम न्यायालय के महारजिस्ट्रार के कार्यालय को अपनी प्रशासनिक कार्यों में संघ में स्थापित सरकार की राजभाषा नीति का अनुपालन करना होगा और हिंदी में कार्य करने के लिए आधारभूत संरचना स्थापित करनी होगी । संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदन के पांचवें खंड में की गई इस सिफारिश को महामहिम राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार किया जा चुका है और भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने तारीख 4 जनवरी, 2012 के पत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के महारजिस्ट्रार को महामहिम राष्ट्रपति की संस्तुति को ध्यान में रखते हुए उचित कार्यवाही करने का अनुरोध किया गया है ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

फरवरी, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अध्यक्ष, अजमेर विद्युत वितरण निगम लि. अजमेर **बनाम** मूलचन्द और अन्य	256
अभय कुमार साहू **बनाम** ओडिशा राज्य और अन्य	144
अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड	222
जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड **बनाम** भारतीय रिजर्व बैंक	129
तायल काटन प्रा. लिमिटेड **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	212
दीपाली ऋषिदास (श्रीमती) और अन्य **बनाम** श्रीमती बेलाश मणि ऋषिदास और अन्य	191
मनतव्य सत्यम अग्रवाल **बनाम** सत्यम राजीव रत्न अग्रवाल और अन्य	182
मृदुल शर्मा **बनाम** श्रीमती गीतूमोनी भट्टाचार्जी	175
वी. कृष्णप्पा **बनाम** जे. सी. गंगालक्ष्मय्या और अन्य	150
श्याम सिंह और अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम	263
सुभाष राय **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	160
स्नेहांसु सेन गुप्ता **बनाम** सितांगसू सेन गुप्ता और एक अन्य	199

संसद् के अधिनियम

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 30

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 263 और 278 – विल का प्रोबेट – मंजूरी के समय आवश्यक पक्षकार न बनाने की दलील – आवेदक द्वारा प्रोबेट की जानकारी होने के बावजूद 17 वर्ष तक कोई कार्रवाई न की जानी – सामान्यतया पक्षकार न बनाने की कमी प्रोबेट के रद्दकरण को आमंत्रित करती है – तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रद्दकरण के लिए वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करना उचित नहीं है ।

स्नेहांसु सेन गुप्ता बनाम **सितांगसू सेन गुप्ता और एक अन्य** 199

– धारा 372 [सपठित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 11] – मृतक द्वारा ऋण और प्रतिभूतियां छोड़ी जानी – उत्तराधिकार प्रमाणपत्र – दूसरी पत्नी और उसके बच्चों द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन – मृतक की पारिवारिक पेंशन के लिए केवल प्रथम पत्नी ही हक़दार होगी – तथापि, अन्य सेवानिवृत्ति फायदों, ऋणों और प्रतिभूतियों में मृतक की प्रथम पत्नी और बच्चों के अतिरिक्त दूसरी पत्नी के बच्चों को भी अंश दिया जाएगा ।

दीपाली ऋषिदास (श्रीमती) और अन्य बनाम **श्रीमती बेलाश मणि ऋषिदास और अन्य** 191

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31)

– धारा 7 [सपठित बैंककारी विनियम अधिनियम, 1949 की धारा 35कक और 35कख] – वित्तीय लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का आरम्भ – वित्तीय लेनदार को व्यतिक्रम कारित होने पर निगमित देनदार के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ

पृष्ठ संख्या

करने के लिए आवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार है – निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ वित्तीय लेनदार द्वारा विधि के अन्तर्गत प्रतिषिद्ध नहीं है चाहे इसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कोई निर्देश जारी न किया गया हो ।

जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड बनाम **भारतीय रिजर्व बैंक** 129

– धारा 14 और 10 [कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 446(1) और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138] – ऋणस्थगन के परिणामस्वरूप दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अन्तर्गत लम्बित कार्यवाहियों पर पड़ने वाले प्रभाव – ऋणस्थगन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को किसी दांडिक कार्यवाही को चलाए जाने के विरुद्ध किसी प्रतिषेध के लिए विनिर्दिष्ट रूप से निदेशित करने का कोई अधिकार नहीं – विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण में लम्बित कार्यवाहियों को ध्यान में रखते हुए दांडिक कार्यवाहियों को स्थगित रखे जाने का आदेश पारित करके घोर अवैधता कारित की ।

तायल काटन प्रा. लिमिटेड बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 212

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 96 [सपठित पश्चिमी बंगाल मोटर यान नियम, 1989 का नियम 141] – नए रूट पर परमिट – छह मास से अधिक परमिट का विस्तार – विधिमान्यता – रिट याची द्वारा विस्तार को नियमों के विरुद्ध बताते हुए आक्षेपित किया जाना – चूंकि नियमों में छह मास से अधिक अवधि के लिए परमिट का विस्तार किया जाना अनुज्ञेय नहीं है – अतः प्राधिकारियों द्वारा किया गया ऐसा

पृष्ठ संख्या

विस्तार अविधिमान्य माना जाएगा ।

सुभाष राय बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 160

– धारा 166 – प्रतिकर के लिए आवेदन – उच्च क्षमता विद्युत लाइन और टेलीफोन लाइन के तार एक ही स्थान से गुजरने और बिजली के तार का टेलीफोन लाइन के तार के संपर्क में आ जाने के कारण टेलीफोन लाइन में विद्युत का प्रवाह हो जाना और टेलीफोन के रिसीवर तक पहुंच जाना – मृतक की मृत्यु टेलीफोन का रिसीवर उठाते समय बिजली का करंट लगने से होना – मृतक के आश्रित मोटर यान अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत प्रतिकर के हकदार हैं ।

अध्यक्ष, अजमेर विद्युत वितरण निगम लि. अजमेर बनाम **मूलचन्द और अन्य** 256

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 16(ग), 19 और 20 – विक्रय के लिए करार – विनिर्दिष्ट अनुपालन – विक्रेताओं द्वारा अग्रिम धनराशि के रूप में 15,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् नियत तारीख पर विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए एक विक्रेता द्वारा उप रजिस्ट्रार के कार्यालय न पहुंचना – वादी द्वारा शेष प्रतिफल धनराशि के साथ उप रजिस्ट्रार कार्यालय पहुंचना – क्रेता द्वारा विक्रेताओं को करार के अनुपालन के लिए सूचना जारी की जानी – विक्रेताओं द्वारा जवाबी सूचना के जरिए करार रद्द करने की सूचना दी जानी – विक्रेताओं द्वारा अन्य व्यक्ति के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन – वादी द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए फाइल किए गए वाद में विक्रेताओं द्वारा कोई लिखित कथन फाइल न किया जाना – चूंकि विक्रेता और पश्चात्वर्ती क्रेता द्वारा असद्भाविक आशय से प्रथम क्रेता के करार को विफल करने का प्रयास किया गया है इसलिए

पृष्ठ संख्या

पश्चात्वर्ती क्रेता को सद्भाविक क्रेता नहीं माना जा सकता – चूंकि क्रेता की तैयारी और इच्छा साबित हो गई है अतः वह विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री पाने का हकदार है ।

वी. कृष्णप्पा बनाम **जे. सी. गंगालक्ष्मय्या और अन्य** 150

संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9)

– धारा 126 – बैंक प्रत्याभूति का नकदीकरण – प्रश्नगत बैंक प्रत्याभूतियां बिना शर्त और अपरिवर्तनीय थीं जिनको ग्राहक के पक्ष में ठेकेदार की बाध्यताओं के निर्वहन के संबंध में जारी किया गया था – तत्पश्चात् इन बैंक प्रत्याभूतियों को संशोधित किया गया और पक्षों की सहमति से इनकी समयावधि को विस्तारित कर दिया गया – संविदा के निबंधनों के अनुसार बैंक प्रत्याभूतियों का विस्तारित अवधि के भीतर अवलंब लिया जाना अनुज्ञेय होगा ।

अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड 222

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 और 299 – सरकारी संविदा – याची द्वारा निम्नतर निविदा बोली लगाई जानी – याची द्वारा तकनीकी अर्हता पास किया जाना – निम्नतर निविदा बोलीकर्ता को उसके पूर्व में सरकार के अन्य कार्य में धीमे प्रदर्शन के आधार पर संविदा अधिनिर्णीत न किया जाना – दूसरे निम्नतर निविदा बोलीकर्ता को संविदा अधिनिर्णीत करने के लिए बातचीत के लिए आमंत्रण – निम्नतर बोलीकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना दूसरे निम्नतर बोलीकर्ता को आमंत्रण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है – अतः प्रथम निम्नतर बोलीकर्ता को ही संविदा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए ।

अभय कुमार साहू बनाम **ओडिशा राज्य और अन्य** 144

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 142 और अनुच्छेद 226 – उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के निर्णय – निर्वचन – प्रवर्तन – बार के सदस्यों द्वारा उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के निर्णयों का संपूर्णतः और सही परिप्रेक्ष्य में निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि तर्कयुक्त बहस हो सके और मुकदमेदारों के साथ उचित न्याय हो सके ।

सुभाष राय बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 160

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 8, नियम 3, 4 और 5 – प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में प्रत्याख्यान का विनिर्दिष्ट होना – यदि वादपत्र में के तथ्य संबंधी हर अभिकथन का विनिर्दिष्टतः या आवश्यक विवक्षा से प्रत्याख्यान नहीं किया जाता या प्रतिवादी के अभिवचन में यह कथन कि वह स्वीकार नहीं किया जाता, तो वह तथ्य संबंधी अभिवचन स्वीकार कर लिया गया मान लिया जाएगा – परन्तु ऐसे स्वीकार किए गए किसी भी तथ्य के बाबत ऐसी स्वीकृति के अलावा अन्य प्रकार से साबित किए जाने की अपेक्षा न्यायालय स्वविवेकानुसार करेगा ।

श्याम सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम** 263

– आदेश 22, नियम 3 और 10 और आदेश 43 का नियम 1 तथा धारा 96 – प्रकीर्ण अपील – वादी की मृत्यु के पश्चात् विल के आधार पर पक्षकार बनाने के लिए आवेदन – न्यायालय द्वारा विल को साबित न माना जाना – आवेदन की ग्राह्यता – ऐसे किसी मामले में आदेश 22 का नियम 10 लागू नहीं होता – अतः आवेदन की खारिजी के विरुद्ध प्रकीर्ण अपील ग्राह्य नहीं है ।

मनतव्य सत्यम अग्रवाल बनाम **सत्यम राजीव रत्न अग्रवाल और अन्य** 182

पृष्ठ संख्या

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(i-क) और (i-ख) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – पत्नी के विरुद्ध परित्याग और क्रूरता बरतने के अभिकथन – साक्ष्य से यह साबित होना कि पति अपनी पत्नी के साथ अपनी ससुराल में रहने लगा था और बाद में वह अपनी पत्नी और बच्ची को छोड़कर चला आया – पत्नी द्वारा यह साक्ष्य दिया जाना कि उसका पति सदैव शराब पिए स्थिति में रहता था – विचारण न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री से इनकार – चूंकि पति परित्यजन और क्रूरता के तथ्य को साबित करने में असमर्थ रहा है और इसके विपरीत पति द्वारा क्रूरता बरती जानी साबित हुई है – अतः विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से ठीक ही इनकार किया गया है ।

मृदुल शर्मा बनाम **श्रीमती गीतूमोनी भट्टाचार्जी** 175

जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड

बनाम

भारतीय रिजर्व बैंक

तारीख 24 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति पंकज मिठाल और न्यायमूर्ति मुख्तार अहमद

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31) – धारा 7 [सपठित बैंककारी विनियम अधिनियम, 1949 की धारा 35कक और 35कख] – वित्तीय लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का आरम्भ – वित्तीय लेनदार को व्यतिक्रम कारित होने पर निगमित देनदार के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए आवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार है – निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ वित्तीय लेनदार द्वारा विधि के अन्तर्गत प्रतिषिद्ध नहीं है चाहे इसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कोई निर्देश जारी न किया गया हो ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड जो कि एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी है और जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड नामक कम्पनी की धारक कम्पनी है, ने भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड को तारीख 14 अगस्त, 2018 को याची के विरुद्ध दिवाला कार्यवाहियां आरम्भ किए जाने को अभिखंडित किए जाने, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष कम्पनी याचिका संख्या (आई.बी.) 330/ए. एल. डी./2018, आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड बनाम जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड वाले मामले में तारीख 10 सितम्बर, 2018 को पारित आदेश को अभिखंडित किए जाने और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को याचियों द्वारा फाइल किए गए समाधान की योजना, जो कम्पनी याचिका संख्या (ए.ए.ए.)90/ए. एल. डी./2018 में निर्धारित समयावधि के भीतर विधि अनुसार विचारार्थ लम्बित है, को मंजूरी प्रदान किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के निर्देश के प्रयोजनार्थ

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेते हुए यह याचिका फाइल की है । इस याचिका में याची द्वारा यह प्रार्थना की गई कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड को दिए गए तारीख 14 अगस्त, 2018 के आक्षेपित निर्देश को अभिखंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ अधिकार पृच्छा की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, तारीख 10 सितम्बर, 2018 के आदेश को अभिखंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ अधिकार पृच्छा की प्रकृति में रिट, आदेश और कम्पनी याचिका संख्या (आई.बी.)330/ए. एल. डी./2018, आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड बनाम जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड, जिसको प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण, इलाहाबाद शाखा में फाइल किया गया है, में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए तारीख 14 अगस्त, 2018 के आदेश निर्देश के मतावलम्बन में पारित समस्त कार्यवाहियों और आदेश और कम्पनी याचिका संख्या या निर्देश जारी किया जाए, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण, इलाहाबाद शाखा को कम्पनी याचिका संख्या (ए.ए.ए.)90/ए.एल. डी./2018 द्वारा फाइल की गई समाधान योजना को विधि अनुसार और बिना किसी विलम्ब के और निश्चायक रूप से उस समयावधि के भीतर जिसको यह माननीय न्यायालय उचित प्रतीत करे, मंजूरी प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की रिट द्वारा निर्देशित किया जाए । संक्षेप में, याची भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक को दिए गए निर्देश, जिसके द्वारा याची के विरुद्ध राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला कार्यवाही किए जाने के लिए निर्देशित किया गया है, द्वारा व्यथित है और उसके विरुद्ध आई. सी. आई. सी. आई. बैंक द्वारा आरम्भ की गई कार्यवाहियों को अभिखंडित कराना चाहता है । याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया पूर्वोक्त विनिश्चय स्पष्ट है और असंदिग्ध रूप से भारतीय रिजर्व बैंक को याची के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करता है । कोई भी फोरम, यहां तक कि यह न्यायालय भी अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय या निर्देश का अनदेखा नहीं कर सकता । तद्नुसार, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंककारी विनियम अधिनियम की धारा 35कक के अधीन प्रदत्त शक्तियों का तात्पर्यित रूप से प्रयोग करते हुए तारीख 14

अगस्त, 2018 के पत्र द्वारा जारी किए गए निर्देश न तो बिना अधिकारिता के हैं और न ही अन्यथा रूप से अवैध हैं । मात्र दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ एक क्षण के लिए यह उपधारणा करते हुए कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निदेश विधि की दृष्टि में व्यर्थ है, न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा कि आई. सी. आई. सी. आई. बैंक उक्त निर्देश के आधार पर स्वतंत्र रूप से याची, जो दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत एक निगमित ऋणी है, के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने से विवर्जित है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 वित्तीय लेनदार को, जब कोई 'व्यतिक्रम' कारित होता है, निगमित देनदार के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए आवेदन फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करती है । इसलिए, निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ याची, जो वित्तीय लेनदार है, द्वारा आवेदन फाइल किया जाना विधि के अन्तर्गत प्रतिषिद्ध नहीं है चाहे इस प्रयोजनार्थ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कोई निर्देश जारी न किया गया हो । इसलिए, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तारीख 14 अगस्त, 2018 को जारी किए गए निर्देश का दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन आई. सी. आई. सी. आई. बैंक द्वारा आरम्भ की गई कार्यवाहियों के संबंध में कोई महत्व नहीं है । इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय याची की सहायता तकनीकी कारणोंवश नहीं कर सकता जब तक कि गंभीर रूप से अन्याय हो जाने की संभाव्यता न हो किन्तु ऐसी कोई संभाव्यता इस मामले में प्रतीत नहीं होती । याची पर किसी भी प्रकार से गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कोई संभाव्यता नहीं है यदि वह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन आरम्भ की गई कार्यवाहियों में भाग लेता है और जिनके संबंध में उसने इस याचिका की पोषणीयता और कोई 'व्यतिक्रम' कारित न किए जाने के संबंध में पहले ही आक्षेप प्रस्तुत कर दिए हैं, और जो इन कार्यवाहियों की पोषणीयता के लिए अनिवार्य है । याची द्वारा फाइल किए गए पूर्वोक्त आक्षेपों पर न्यायनिर्णायक प्राधिकारी/राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा निर्णय किया जाना शेष है । यहां पर यह उल्लेख किया जाना संदर्भ के परे नहीं होगा कि इस प्रकार के वित्तीय मामलों में न्यायालय द्वारा कम से कम मध्यक्षेप किया जाना चाहिए और ऐसे मामलों को विशेषज्ञ फोरम, जिनको इस कानून के अन्तर्गत विशेष रूप से सृजित किया गया है, द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए । पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय का मत है कि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामला ऐसा मामला

नहीं है जिसमें असाधारण अधिकारिता का प्रयोग किए जाने की कोई आवश्यकता है । (पैरा 24, 25, 26, 27, 28, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2018] (2018) 9 स्केल 490 :
चित्र शर्मा और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** । 8

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल रिट याचिका संख्या 31329.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री रंजीत कुमार (वरिष्ठ काउंसेल) और राजेन्द्र प्रसाद अग्रवाल

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से सर्वश्री अनुराग खन्ना (वरिष्ठ काउंसेल), अमित सक्सेना और जे. के. चोक्शी

प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से सर्वश्री वी. के. उपाध्याय (वरिष्ठ काउंसेल) और मनीष त्रिवेद्वी

निर्णय

याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री रंजीत कुमार, जिनकी सहायता श्री आर. पी. अग्रवाल द्वारा की गई और प्रत्यर्थी संख्या 1 भारतीय रिजर्व बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री अनुराग खन्ना, जिनकी सहायता श्री अमित सक्सेना और जे. के. चोक्शी द्वारा की गई और प्रत्यर्थी संख्या 2 आई. सी. आई. सी. आई. बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री वी. के. उपाध्याय जिनकी सहायता श्री मनीष त्रिवेद्वी द्वारा की गई, को सुना ।

2. याची जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड, जो कि एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी है और जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड नामक कम्पनी की धारक कम्पनी है, ने यह याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेते हुए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक को तारीख 14 अगस्त, 2018 को याची के विरुद्ध दिवाला कार्यवाहियां आरम्भ किए जाने को अभिखंडित किए जाने, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष कम्पनी याचिका संख्या (आई.बी.) 330/ए. एल. डी./2018, आई. सी. आई. सी. आई. बैंक

लिमिटेड बनाम जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड वाले मामले में तारीख 10 सितम्बर, 2018 को पारित आदेश को अभिखंडित किए जाने और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को याचियों द्वारा फाइल की गई समाधान योजना, जो कम्पनी याचिका संख्या (ए.ए.ए.)90/ए. एल. डी./2018 में एक निर्धारित समयावधि के भीतर विधि अनुसार विचारार्थ लम्बित है, को मंजूरी प्रदान किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की है ।

3. इस याचिका में याची द्वारा की गई प्रार्थनाओं को सुविधा की दृष्टि से नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :–

(i) भारतीय रिजर्व बैंक (प्रत्यर्थी संख्या 1) द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक (प्रत्यर्थी संख्या 2) को दिए गए तारीख 14 अगस्त, 2018 के आक्षेपित निर्देश, (जो इस याचिका का संलग्नक-1 है) को अभिखंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए ;

(ii) कम्पनी याचिका संख्या (आई.बी.) 330/ए. एल. डी./2018, आई. सी. आई. सी. आई. बैंक बनाम जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड, जिसको प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण, इलाहाबाद शाखा (प्रत्यर्थी संख्या 3) के समक्ष भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए तारीख 14 अगस्त, 2018 के आक्षेपित निर्देश के मतावलम्बन में फाइल किया गया, में पारित आदेश और समस्त कार्रवाई को और तारीख 10 सितम्बर, 2018 के आदेश (जो इस रिट याचिका का संलग्नक-2 है) को अभिखंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ;

(iii) राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण, इलाहाबाद शाखा (प्रत्यर्थी संख्या 3) को कम्पनी याचिका संख्या (ए.ए.ए.)90/ए. एल. डी./2018 द्वारा फाइल की गई समाधान योजना को विधि अनुसार और बिना किसी विलम्ब के और निश्चायक रूप से उस समयावधि के भीतर जिसको यह माननीय न्यायालय उचित प्रतीत करे, मंजूरी प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की रिट द्वारा निर्देशित किया जाए ।

4. संक्षेप में याची राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष याची के विरुद्ध दिवाला कार्यवाही आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक को दिए गए निर्देश द्वारा व्यथित

है और उसके विरुद्ध आई. सी. आई. सी. आई. बैंक द्वारा आरम्भ की गई कार्यवाहियों को अभिखंडित कराना चाहता है ।

5. आरम्भिकतः, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ काउंसेलों श्री अनुराग खन्ना और श्री वी. के. उपाध्याय ने इस याचिका की पोषणीयता के संबंध में एक आरम्भिक आक्षेप उठाया जो प्राथमिक रूप से इस कारणवश है कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियां माननीय उच्चतम न्यायालय और उनके मतावलम्बन में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुपालन में आरम्भ की गई हैं । याची ने पहले ही इस आधार पर आक्षेप फाइल कर दिए हैं कि वर्तमान याचिका राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष फाइल की गई है और उस पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा न तो विचार किया जा सकता है और न ही उसको निर्णीत किया जा सकता है । अतः, इस मामले में रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी प्रकार के मध्यक्षेप से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होता ।

6. वरिष्ठ काउंसेल श्री रंजीत कुमार ने न केवल प्रत्यर्थियों की ओर से उठाए गए आरम्भिक आक्षेपों के विरुद्ध निवेदन किए बल्कि सम्पूर्ण समस्या को सारभूत रूप से गुणागुण के आधार पर संबोधित भी किया ।

7. श्री रंजीत कुमार ने निवेदन किया कि तारीख 14 अगस्त, 2018 के आदेश में समाविष्ट भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देश इस कारणवश पूर्णतः अवैध और विधि की दृष्टि में व्यर्थ हैं कि दिवाला कार्यवाहियां केवल याची के विरुद्ध आरम्भ की जा सकती हैं यदि वह "व्यतिक्रमी" हो । उन्होंने इस संबंध में हमारा ध्यान 1949 के बैंककारी विनियम अधिनियम की धारा 35कक की ओर आकर्षित किया जिसको तारीख 4 मई, 2017 के बैंककारी विनियम (संशोधन) अध्यादेश के माध्यम से अंतःस्थापित किया गया है और जो 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अधीन "व्यतिक्रम" कारित किए जाने के संबंध में दिवाला प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक को किसी भी बैंक को निर्देश जारी करने के लिए प्राधिकृत करता है । उन्होंने सामानान्तर रूप से इस न्यायालय का ध्यान दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 3 की उपधारा (12) में अधिकथित "व्यतिक्रम" की परिभाषा की ओर आकर्षित किया जो उपबंधित करती है कि "व्यतिक्रम" से किसी ऋण का तब असंदाय अभिप्रेत है, जब ऋण की संपूर्ण रकम या कोई भाग या किस्त देय या संदेय हो जाती है तथा उसका, यथास्थिति, ऋणी या निगमित ऋणी द्वारा पुनर्संदाय नहीं

किया जाता है ।

8. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने इस बात पर भी जोर दिया कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **चित्र शर्मा और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में और अन्य सहबद्ध याचिकाओं में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं दिया गया है जिसके द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक को याची के विरुद्ध दिवाला कार्यवाही आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ बैंककारी विनियम अधिनियम की धारा 35कक के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए निर्देश जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्देशित किया गया हो या अनुज्ञा प्रदान की गई हो । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किया गया निर्देश माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त विनिश्चय को सम्पूर्ण रूप से गलत ढंग से पढ़े जाने पर आधारित है ।

9. याची कोई "व्यतिक्रमी" नहीं है । उधार देने वालों का संघ जिसमें आई. सी. आई. सी. आई. बैंक सम्मिलित हैं, ने तारीख 7 दिसम्बर, 2017 के पत्र द्वारा स्वीकार किया था कि जयप्रकाश एसोसिएट्स के लिए एक समग्र पुनर्गठन और पुनर्निर्माण योजना का अनुमोदन संयुक्त उधारदाता फोरम के 90 प्रतिशत बहुमत, जो उपस्थित हों और जिन्होंने भारतीय रिजर्व बैंक के तारीख 5 मई, 2017 के परिपत्र के तत्वाधान में मताधिकार का प्रयोग किया हो, द्वारा किया गया था और समस्त कार्यवाहियां, जो संयुक्त उधारदाता संघ द्वारा क्रियान्वयन के माध्यम से खाते के विनियमन के लिए अपेक्षित थीं, को समग्र पुनर्गठन और पुनर्निर्माण योजना द्वारा अनुमोदित कर दिया गया था ।

10. श्री रंजीत कुमार ने आगे निवेदन किया कि याची को भारतीय रिजर्व बैंक के तारीख 14 अगस्त, 2018 के निर्देश के विरुद्ध विधि की दृष्टि में कोई अनुतोष प्राप्त नहीं है और इसलिए उसको चुनौती केवल इस न्यायालय की रिट अधिकारिता का आश्रय लिए जाने के द्वारा ही दी जा सकती है ।

11. याचिका में प्रकट किए गए तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने तारीख 14 अगस्त, 2018 के पत्र द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक के प्रबंध निदेशक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी को निर्देशित किया था कि चूंकि उच्चतम न्यायालय ने **चित्र शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले को अंतिम रूप से निर्णीत कर दिया है, इसलिए, आई. सी.

---

[1] (2018) 9 स्केल 490.

आई. सी. आई. बैंक को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अन्तर्गत याची द्वारा कारित "व्यतिक्रम" के संबंध में दिवाला समाधान प्रक्रिया जारी किए जाने के लिए निर्देशित किया गया है ।

12. इस निर्देश के मतावलम्बन में आई. सी. आई. सी. आई. बैंक ने याची के विरुद्ध निगमित दिवाला कार्यवाहियों के लिए इलाहाबाद स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया है । उक्त याचिका पर विचार किया जा चुका है और याची पर सूचना तामील किए जाने के लिए निर्देशित किया जा चुका है और मामले को सुने जाने के प्रयोजनार्थ ग्रहण किए जाने के लिए तारीख 17 सितम्बर, 2018 निर्धारित की जा चुकी है जिसको बाद में स्थगित करके तारीख 26 सितम्बर, 2018 निर्धारित कर दी गई है, जैसा कि दोनों पक्षों द्वारा सूचित किया गया है । अतः, याची के विरुद्ध दिवाला कार्यवाहियां दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित हैं ।

13. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 की उपधारा (4) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी अर्थात् राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अभिलेखों के आधार पर "व्यतिक्रम" की विद्यमानता या निगमित दिवाला की कार्यवाही आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन प्राप्त किए जाने पर वित्तीय लेनदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करती है । इस कार्यवाही को आवेदन की प्राप्ति पर 14 दिनों की विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर पूरा किया जाना होता है ।

14. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 की उपधारा (5) उपबंधित करती है कि जहां न्यायनिर्णायक प्राधिकारी/राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण इस बाबत संतुष्ट है कि "व्यतिक्रम" कारित हुआ है और धारा 7 के अधीन फाइल किया गया आवेदन पोषणीय है और इस आवेदन के फाइल किए जाने में कोई असंगतता नहीं है, तो वह उस आवेदन को विचारणार्थ स्वीकार कर सकता है या जहां कोई "व्यतिक्रम" कारित नहीं किया गया है या आवेदन पोषणीय नहीं है, तो वह उस आवेदन को अस्वीकृत कर सकता है ।

15. उपरोक्त उपबंध को सीधे और सरल ढंग से पढ़े जाने पर ज्ञात होता है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी/राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन फाइल की गई याचिका को विचारणार्थ ग्रहण किए जाने के पूर्व अभिकथित निगमित देनदार द्वारा "व्यतिक्रम" कारित किए जाने के तथ्य को विनिर्धारित करना होता है । अन्य शब्दों में न्यायनिर्णायक प्राधिकारी/राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा निगमित देनदार द्वारा "व्यतिक्रम" कारित किए जाने का विनिर्धारण दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन फाइल की गई याचिका को विचारणार्थ स्वीकार किए जाने के प्रयोजनार्थ एक पूर्व शर्त है । इस मामले में उक्त प्रक्रम अभी तक नहीं आया है । इसलिए याची को अधिकार है कि वह न्यायनिर्णायक प्राधिकारी/राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष उसके द्वारा "कोई व्यतिक्रम नहीं" के तथ्य को साबित करे ।

16. "व्यतिक्रम" का विवाद्यक, यदि कोई हो, तथ्य का विवाद्यक होता है जो साक्ष्य पर आधारित होता है और यह न्यायालय स्वयं को इस प्रकार के तथ्यात्मक विवाद्यक को निर्णीत करने के लिए सज्जित नहीं पाता, विशेष रूप से तब जब ऐसे विवाद्यक पर अन्य कानूनी प्राधिकारी, जिसके समक्ष कार्यवाही लम्बित है, द्वारा विचार किया जाना और उसको निर्णीत किया जाना होता है ।

17. हमारे लिए यह उचित नहीं होगा कि **चित्र शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अनदेखा करें या श्री रंजीत कुमार द्वारा दी गई इस दलील कि पूर्वोक्त विनिश्चय द्वारा अनेक प्रकार से भारतीय रिजर्व बैंक को निर्देशित किया गया है या अनुज्ञा प्रदान की गई है कि वे याची के विरुद्ध दिवाला कार्यवाहियां आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्देश जारी करें, पर विचार न करें ।

18. माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त कार्यवाही को मकान खरीददारों द्वारा जयप्रकाश इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड, जो याची की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक ईकाई है, की परियोजनाओं में उनके हितों को संरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ आरम्भ किया गया था ।

19. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन दिवाला कार्यवाही को जयप्रकाश इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड के विरुद्ध आई. डी. बी. आई. बैंक द्वारा यह दलील देते हुए आरम्भ किया गया था कि इस कम्पनी ने उसके देयों के पुनर्संदाय में 526.11 करोड़ रुपए का "व्यतिक्रम" कारित किया है । उन कार्यवाहियों में अन्तरिम समाधान वृत्तिक की नियुक्ति की गई थी । उस मामले के याची ने माननीय उच्चतम

न्यायालय के समक्ष शिकायत की कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया में महत्वपूर्ण पण्यधारकों, जिनमें से अधिकांश व्यक्तिगत पण्यधारक हैं जैसे कि मकान खरीददार, के हितों का अनदेखा किया गया है । उन कार्यवाहियों में याची कम्पनी जो कि जयप्रकाश इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड की धारक सहायक कम्पनी है, को तारीख 11 सितम्बर, 2017 के आदेश द्वारा तारीख 22 अक्टूबर, 2017 तक या उससे पूर्व 2000 करोड़ रुपए जमा करने के लिए निर्देशित किया गया था । उस मामले में याची न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने 2000 करोड़ रुपए जमा किए जाने के प्रयोजनार्थ दिए गए उपरोक्त आदेश को समाप्त किए जाने या उस आदेश को उपांतरित किए जाने के लिए आवेदन फाइल किया । उक्त कार्यवाहियों में भारतीय रिजर्व बैंक ने भी तारीख 10 जनवरी, 2018 को अन्तर्वर्ती आवेदन प्रस्तुत किया जिसके द्वारा उन्होंने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अन्तर्गत जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड के विरुद्ध राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने की अनुज्ञा चाही थी ।

20. इस स्थिति में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि सुनवाई के दौरान इस बाबत मतभिन्नता थी कि जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड के परिसमापन से मकान खरीददारों, जिनके हितों को भी निगमित दिवाला के मामलों में तारीख 7 जून, 2018 से प्रभावी संशोधन के माध्यम से संरक्षित किए जाने की ईप्सा की गई है, के हितों की पूर्ति नहीं होगी । याची की ओर से दिए गए प्रस्तावों को न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि न्यायालय का यह मत था कि इससे दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता द्वारा स्थापित अनुशासन गंभीर रूप से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है और इस कानून के कानूनी उपबंध प्रभावशून्य हो जाएगें । तत्समय, याची की विश्वसनीयता के बारे में गंभीर संदेह व्यक्त किए गए जिसके बारे में यह कहा गया कि उसने जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड की निधियों को अपने स्वयं के कारबार में लगा दिया है । न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, जिसको विशेषज्ञता के साथ निगमित दिवालों के समाधान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अधिनियमित किया गया है, द्वारा स्थापित अनुशासन का पालन करना चाहिए । इस कानून को लोक हित में और उत्तम निगमित स्वशासन के लिए अधिनियमित किया गया है । इसलिए न्यायालय को समाधान प्रक्रिया की जटिलताओं की निगरानी का भार अपने ऊपर नहीं

लेना चाहिए और उस तंत्र को स्थानापन्न करने में अत्यधिक सावधान रहना चाहिए जिसको दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता द्वारा अपने स्वयं के तंत्र को प्रतिस्थापित करते हुए और न्यायिक पक्ष को निर्देश देते हुए अधिकथित किया गया है ।

21. इस संदर्भ में माननीय न्यायालय द्वारा बैंकिंग विनियम अधिनियम की धारा 35कक और 35कख के उपबंधों को निर्दिष्ट करते हुए याची के विरुद्ध दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुज्ञा प्रदान किए जाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के अनुरोध पर जो मताभिव्यक्तियां की गई, वे निम्नलिखित है :–

"40. ....

....

भारतीय रिजर्व बैंक ने एक आन्तरिक सलाहाकार समिति गठित की थीं जिसमें उसके स्वतंत्र निदेशक थे । आन्तरिक सलाहाकार समिति ने तारीख 31 मार्च, 2017 को बैंककारी प्रणाली में जोखिमों वाले शीर्ष 500 खातों के मध्य से उन खातों पर विचार किया जिनको भागतः या पूर्णतः गैर-निष्पादनीय खाता के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया था । आन्तरिक सलाहाकार समिति ने सर्वप्रथम जो कदम उठाया, वह उन सभी गैर-निष्पादनीय खातों के संबंध में की गई सिफारिश थी, जो 5000 करोड़ रुपए से अधिक की बकाया राशि वाली निधियों या बकाया राशि से संबंधित थे । आन्तरिक सलाहाकार समिति ने आरम्भिकतः उनमें से 12 खातों को चुना जिनमें कुल 1,79,769 करोड़ रुपए का जोखिम अन्तर्वलित था । जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड का खाता उन 12 खातों में से ऐसा ही एक खाता था जिसके संबंध में बैंकों को दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के संबंध में निर्देश जारी किए जा चुके हैं । इसके पश्चात् आन्तरिक सलाहाकार समिति ने यह सिफारिश की कि उन खातों, जिनमें से 60 प्रतिशत खातों या 60 प्रतिशत से भी अधिक खातों को तारीख 30 जून, 2017 को गैर-निष्पादनीय खाता के रूप में वर्गीकृत किया जा चुका है, के संबंध में बैंकों को 6 माह के भीतर एक ठोस समाधान योजना कार्यान्वित करने के लिए निर्देशित किया जा सकता है जिसमें विफल रहने पर बैंकों को तारीख 31 दिसम्बर, 2017 तक दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत निदेश फाइल करने

के लिए निर्देशित किया जा सकता है । जयप्रकाश एसोशिएट्स लिमिटेड ऐसा ही एक निगमित अस्तित्व था । किन्तु कोई ठोस समाधान योजना तैयार नहीं की जा सकी जिसके परिणामस्वरूप इस निगमित अस्तित्व के मामले को भी निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के लिए निर्दिष्ट किया जाना अपेक्षित है ।

41. ....

....

वे तथ्य जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा फाइल किए गए आवेदन के आधार पर इस न्यायालय के समक्ष विचाराणार्थ उत्पन्न हुए हैं, जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड और जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड की वित्तीय कठिनाइयों की ओर संकेत करते हैं । मकान खरीददारों की उनकी वित्तीय अक्षमता के संबंध में आशंका का संज्ञान भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा लिया गया जिसने एक जिम्मेदार संस्था के रूप में उनकी आशंकाओं को इस न्यायालय के समक्ष रखा है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को एक विस्तृत दिवाला विधि और विनिर्दिष्ट विधायी आशय के स्वरूप में अधिनियमित किया गया है । वह अध्यादेश जिसको जून, 2008 में प्रख्यापित किया गया, के माध्यम से लाए गए संशोधनों द्वारा मकान खरीददारों के हितों की रक्षा किया जाना इप्सित है । तद्नुसार, हम भारतीय रिजर्व बैंक के उस अनुरोध को स्वीकार करते हैं जिसके द्वारा उन्होंने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ आन्तरिक सलाहाकार समिति की सिफारिशों को मंजूरी प्रदान किए जाने की ईप्सा की है ।

42. तद्नुसार हम निम्नलिखित निर्देश जारी करते हैं :

(i) ....

(ii) ....

(iv) ....

(v) भारतीय रिजर्व बैंक को उनके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए आवेदन के निबंधनों को ध्यान में रखते हुए जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान

कार्यवाहियां आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ बैंकों को निर्देशित किए जाने के लिए अनुज्ञा प्रदान की जाती है ।

(vi) ....।"

22. उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया पूर्वोक्त विनिश्चय स्पष्टतः उपदर्शित करता है कि याची के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्तर्वर्ती आवेदन पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि याची वित्तीय कठिनाइओं का सामना कर रहा है और मकान खरीददारों के हितों को संरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ भारतीय रिजर्व बैंक का यह अनुरोध कि उनको दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत याची के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की जाए, को बैंकों को यह निर्देश दिए जाने के प्रयोजनार्थ मंजूर किया जाता है कि याची के विरुद्ध दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ की जाए ।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाले गए उपरोक्त निष्कर्षों और जारी किए गए निर्देशों को ध्यान में रखते हुए ऋणदाताओं के संघ द्वारा तारीख 7 दिसम्बर, 2017 को जारी किए गए पत्र का कोई महत्व नहीं है और वह पूर्णतः महत्वहीन है ।

24. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया पूर्वोक्त विनिश्चय स्पष्ट है और असंदिग्ध रूप से भारतीय रिजर्व बैंक को याची के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करता है । कोई भी फोरम, यहां तक कि यह न्यायालय भी अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय या निर्देश का अनदेखा नहीं कर सकता । तद्नुसार, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंककारी विनियम अधिनियम की धारा 35कक के अधीन प्रदत्त शक्तियों का तात्पर्यित रूप से प्रयोग करते हुए तारीख 14 अगस्त, 2018 के पत्र द्वारा जारी किए गए निर्देश न तो बिना अधिकारिता के हैं और न ही अन्यथा रूप से अवैध हैं ।

25. मात्र दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ एक क्षण के लिए यह उपधारणा करते हुए कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निदेश विधि की दृष्टि में व्यर्थ है, हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते कि आई. सी. आई. सी. आई. बैंक उक्त निर्देश के आधार पर स्वतंत्र रूप से याची, जो

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत एक निगमित ऋणी है, के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने से विवर्जित है ।

26. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 वित्तीय लेनदार को, जब कोई "व्यतिक्रम" कारित होता है, निगमित देनदार के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए आवेदन फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करती है । इसलिए, निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ याची, जो वित्तीय लेनदार है, द्वारा आवेदन फाइल किया जाना विधि के अन्तर्गत प्रतिषिद्ध नहीं है चाहे इस प्रयोजनार्थ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कोई निर्देश जारी न किया गया हो ।

27. इसलिए, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तारीख 14 अगस्त, 2018 को जारी किए गए निर्देश का दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन आई. सी. आई. सी. आई. बैंक द्वारा आरम्भ की गई कार्यवाहियों के संबंध में कोई महत्व नहीं है ।

28. इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय याची की सहायता तकनीकी कारणोंवश नहीं कर सकता जब तक कि गंभीर रूप से अन्याय हो जाने की संभाव्यता न हो किन्तु ऐसी कोई संभाव्यता इस मामले में प्रतीत नहीं होती । याची पर किसी भी प्रकार से गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कोई संभाव्यता नहीं है यदि वह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन आरम्भ की गई कार्यवाहियों में भाग लेता है और जिनके संबंध में उसने इस याचिका की पोषणीयता और कोई "व्यतिक्रम" कारित न किए जाने के संबंध में पहले ही आक्षेप प्रस्तुत कर दिए हैं, और जो इन कार्यवाहियों की पोषणीयता के लिए अनिवार्य है । याची द्वारा फाइल किए गए पूर्वोक्त आक्षेपों पर न्यायनिर्णायक प्राधिकारी/राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा निर्णय किया जाना शेष है ।

29. यहां पर यह उल्लेख किया जाना संदर्भ के परे नहीं होगा कि इस प्रकार के वित्तीय मामलों में न्यायालय द्वारा कम से कम मध्यक्षेप किया जाना चाहिए और ऐसे मामलों को विशेषज्ञ फोरम, जिनको इस कानून के अन्तर्गत विशेष रूप से सृजित किया गया है, द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए ।

30. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमारा मत है कि हमारे समक्ष प्रस्तुत मामला ऐसा मामला नहीं है जिसमें असाधारण अधिकारिता का प्रयोग किए जाने की कोई आवश्यकता है ।

31. रिट याचिका याची को यह स्वतंत्रता प्रदान करते हुए खारिज की जाती है कि वह राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत कार्यवाहियों में भाग ले और विधि अनुसार अनुज्ञा समस्त संभव आक्षेपों को प्रस्तुत करे ।

32. इसके पहले की हम इस रिट याचिका को खारिज करते, याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री आर. पी. अग्रवाल ने यह अनुरोध किया कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को कम से कम दो सप्ताह तक स्थगित रखे जाने के लिए निर्देशित किया जाए ताकि वे उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकें ।

33. हम इस रिट याचिका को खारिज करते समय इस प्रकार का कोई आदेश पारित करने के लिए इस कारणवश आनत नहीं हैं कि याची राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष ही इस प्रकार का अनुरोध करने के लिए स्वतंत्र है ।

टिप्पण – इस निर्णय में निम्नलिखित संक्षेपणों का प्रयोग किया गया है :–

(1) जे. ए. एल. : जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड

(2) जे. आई. एल. : जयप्रकाश इन्फ्राटेक लिमिटेड

(3) एन. सी. एल. टी. : राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण

(4) आई. बी. सी. : दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता

(5) आर. बी. आई. : भारतीय रिजर्व बैंक

(6) आई. सी. आई. सी. आई. : इंडस्ट्रियल क्रेडिट एण्ड इन्वेस्टमेट कार्पोरेशन आफ इंडिया

(7) आई. डी. बी. आई. : भारतीय औद्योगिक विकास बैंक

(8) सी. आर. आर. पी. : समग्र पुनर्गठन और पुनर्निर्माण योजना

(9) जे. एल. एफ. : संयुक्त उधारदाता फोरम

(10) सी. आई. आर. पी. : निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया

याचिका खारिज की गई ।

अवि.

अभय कुमार साहू

बनाम

ओडिशा राज्य और अन्य

तारीख 10 अप्रैल, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति विनीत सरन और न्यायमूर्ति (डा.) बी. आर. सारंगी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 और 299 – सरकारी संविदा – याची द्वारा निम्नतर निविदा बोली लगाई जानी – याची द्वारा तकनीकी अर्हता पास किया जाना – निम्नतर निविदा बोलीकर्ता को उसके पूर्व में सरकार के अन्य कार्य में धीमे प्रदर्शन के आधार पर संविदा अधिनिर्णीत न किया जाना – दूसरे निम्नतर निविदा बोलीकर्ता को संविदा अधिनिर्णीत करने के लिए बातचीत के लिए आमंत्रण – निम्नतर बोलीकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना दूसरे निम्नतर बोलीकर्ता को आमंत्रण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है – अतः प्रथम निम्नतर बोलीकर्ता को ही संविदा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए ।

याची तथा विरोधी पक्षकार सं. 3 और अन्यों ने विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा तारीख 20 दिसंबर, 2016 को जारी निविदा आमंत्रण सूचना के जवाब में निविदा के लिए आवेदन किया था । तकनीकी बोलियां तारीख 30 जनवरी, 2017 को खोली गईं थीं और इसका परिणाम तारीख 15 फरवरी, 2017 को वेबसाइट पर प्रभारित (अपलोड) किया गया था जिसमें याची तथा विरोधी पक्षकार सं. 3 और दो अन्यों की बोलियां अर्हित पाई गई थीं । सभी अर्हित बोलीकर्ताओं की कीमत बोलियां तारीख 16 फरवरी, 2017 को खोली गई थीं और याची द्वारा प्रस्थापित कीमत सबसे निम्नतर पाई गई थी । यहां स्पष्ट करने के लिए यह उल्लेख किया जा सकता है कि याची की निम्नतर कीमत 8.22 प्रतिशत थी जो प्राक्कलित मूल्य से कम थी, जबकि विरोधी पक्षकार सं. 3 की कीमत 7.2 प्रतिशत थी जो प्राक्कलित मूल्य से कम थी । इस प्रकार अन्य दो बोलीकर्ताओं द्वारा उद्धृत कीमत याची से अधिक थी और इसलिए वे इस मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं हैं । इसके पश्चात् याची ने अपने हक में संविदा अधिनिर्णीत करने के लिए प्रतीक्षा की किन्तु वह यह जानकार आश्चर्य चकित हो गया कि मुख्य इंजीनियर, ग्रामीण कार्य, ओडिशा-विरोधी पक्षकार सं. 2 ने

तारीख 18 मार्च, 2017 को विरोधी पक्षकार सं. 3 को (जो निम्नतर बोलीकर्ताओं में दूसरे नम्बर पर था) बातचीत के लिए बुलाते हुए पत्र लिखा । इस पत्र को आक्षेपित करते हुए यह रिट याचिका इस अनुरोध के साथ फाइल की गई है कि निम्नतर बोलीकर्ता होने के नाते याची के हक में संविदा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – राज्य-विरोधी पक्षकरों द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में यह स्वीकार किया गया है कि याची को जो तकनीकी रूप से अर्हित पाया गया था और जो निम्नतर बोलीकर्ता था और जिसने प्राक्कलित मूल्य से 8.22 प्रतिशत कम दर उद्धृत की थी, तथापि, आर. डब्ल्यू. खंड-II, कटक और अन्य कार्यों के अधीन सड़कों के निष्पादन के संबंध में याची के पूर्व कार्यों पर विचार करके जिसमें यह पाया गया था याची का कार्य धीमा है, याची को संविदा अधिनिर्णीत नहीं की गई । तथापि, इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि याची तकनीकी रूप से अर्हित पाया गया था । जब एक बार कोई पक्षकार तकनीकी रूप से अर्हित पाया गया हो और उसकी तकनीकी बोली खोल दी गई हो तो उसकी बोली उसके पूर्व प्रदर्शन के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती, जो कि संविदाकार को कोई आदेश पारित किए बिना और उसे सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना काली सूची में डालने के बराबर होगा । यदि याची के विरुद्ध धीमा कार्य करने के संबंध में कोई शिकायत या प्रतिकूल रिपोर्ट थी तो याची को सूचना देने के पश्चात् और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन के पश्चात् उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती थी । याची को संविदा अधिनिर्णीत किए जाने से वर्जित करना जबकि उसे तकनीकी रूप से अर्हित पाए जाने पर उसे निम्नतर बोलीकर्ता पाया गया था, विधि में न्यायोचित नहीं माना जा सकता । न्यायालय यह दोहरा सकता है कि ऐसा करना नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण किए बिना संविदाकार को काली सूची में रखने के बराबर होगा । यह भी कहा जा सकता है कि याची की बोली (जो निम्नतर थी) स्वीकार न करने के लिए विरोधी पक्षकार द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है और वे कारण भी जो केवल ऊपर उल्लिखित प्रति-शपथपत्र में उल्लिखित किए गए हैं, विधि में अनुज्ञेय नहीं हैं । इसके अतिरिक्त विरोधी पक्षकारों ने प्रति-शपथपत्र में निविदा आमंत्रण सूचना के ऐसे किसी उपबंध का उल्लेख नहीं किया है जिसके अधीन दूसरे निम्नतर बोलीकर्ता को बातचीत के लिए बुलाया जा सकता हो । ऐसे किसी उपबंध के अभाव में दूसरे निम्नतर बोलीकर्ता से बातचीत

विधि में अनुज्ञेय नहीं होगी । अतः न्यायालय का यह निश्चित मत है कि विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा विरोधी पक्षकार सं. 3 को तारीख 18 मार्च, 2017 को भेजी गई सूचना पूर्णतया अनुचित होने के कारण अभिखंडित किए जाने योग्य है और तद्नुसार इसे अपास्त किया जाता है । वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए चूंकि याची को तकनीकी अर्हता मामले में उपयुक्त पाया गया था और वह निम्नतर बोलीकर्ता था और चूंकि उसकी बोली को खारिज करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, इसलिए याची को संविदा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए । तद्नुसार यह निदेश दिया जाता है कि राज्य-विरोधी पक्षकार सं. 2 को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से 15 दिवसों के भीतर संविदा अधिनिर्णीत करने के संबंध में विधि के अनुसरण में उपयुक्त आदेश पारित किया जाए । (पैरा 4, 5, 8 और 9)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 851 : **मोहिन्दर सिंह गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नई दिल्ली ;**	7
[1952]	ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 16 : **पुलिस आयुक्त, बाम्बे** बनाम **गोरधनदास भांजी** ।	6

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 5728.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से — मैसर्स अशोक कुमार दास, सर्वश्री ए. के. दास, एस. एस. कश्यप, एस. के. मोहंती, ए. पी. मिश्रा और एस. के. मिश्रा

विरोधी पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री पी. के. मुदूली, अपर सरकार अधिवक्ता, मैसर्स पी. के. राठ, आर. एन. पारिजा, ए. के. राउत, एस. के. पटनायक, ए. बेहरा, पी. के. साहू और बी. के. दास

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति विनीत सरन ने दिया ।

मु. न्या. सरन – याची तथा विरोधी पक्षकार सं. 3 और अन्यों ने विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा तारीख 20 दिसंबर, 2016 को जारी निविदा आमंत्रण सूचना के जवाब में निविदा के लिए आवेदन किया था । तकनीकी बोलियां तारीख 30 जनवरी, 2017 को खोली गई थीं और इसका परिणाम तारीख 15 फरवरी, 2017 को वेबसाइट पर प्रभारित (अपलोड) किया गया था जिसमें याची तथा विरोधी पक्षकार सं. 3 और दो अन्यों की बोलियां अर्हित पाई गई थीं । सभी अर्हित बोलीकर्ताओं की कीमत बोलियां तारीख 16 फरवरी, 2017 को खोली गई थीं और याची द्वारा प्रस्थापित कीमत सबसे निम्नतर पाई गई थी । यहां स्पष्ट करने के लिए यह उल्लेख किया जा सकता है कि याची की निम्नतर कीमत 8.22 प्रतिशत थी जो प्राक्कलित मूल्य से कम थी, जबकि विरोधी पक्षकार सं. 3 की कीमत 7.2 प्रतिशत थी जो प्राक्कलित मूल्य से कम थी । इस प्रकार अन्य दो बोलीकर्ताओं द्वारा उद्धृत कीमत याची से अधिक थी और इसलिए वे इस मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं हैं । इसके पश्चात् याची ने अपने हक में संविदा अधिनिर्णीत करने के लिए प्रतीक्षा की किन्तु वह यह जानकार आश्चर्य चकित हो गया कि मुख्य इंजीनियर, ग्रामीण कार्य, ओडिशा-विरोधी पक्षकार सं. 2 ने तारीख 18 मार्च, 2017 को विरोधी पक्षकार सं. 3 को (जो निम्नतर बोलीकर्ताओं में दूसरे नम्बर पर था) बातचीत के लिए बुलाते हुए पत्र लिखा । इस पत्र को आक्षेपित करते हुए यह रिट याचिका इस अनुरोध के साथ फाइल की गई है कि निम्नतर बोलीकर्ता होने के नाते याची के हक में संविदा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए ।

2. हमने याची के विद्वान् काउंसेल श्री एस. के. मिश्रा तथा राज्य-विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता श्री पी. के. मुदूली और प्राइवेट विरोधी पक्षकार सं. 3 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री पी. के. राठ को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया । राज्य-विरोधी पक्षकारों द्वारा प्रति-शपथपत्र फाइल किया गया है जिसका प्रत्युत्तर-शपथपत्र भी फाइल किया गया है । तथापि, विपक्षी पक्षकार सं. 3 को समय दिए जाने के बावजूद उसकी ओर से कोई प्रति-शपथपत्र फाइल नहीं किया गया ।

3. ऊपर उल्लिखित तथ्य विवादित नहीं हैं । इस न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का विनिश्चय किया जाना है कि क्या किसी उपबंध के अभाव में द्वितीय निम्नतर बोलीकर्ता को बातचीत के लिए बुलाया जा सकता है । इस बात पर भी विचार किया जाना है कि क्या निम्नतर बोलीकर्ता को तकनीकी अर्हता उचित पाए जाने के पश्चात् उसे संविदा अधिनिर्णीत किए जाने का अधिकार प्राप्त है ।

4. राज्य-विरोधी पक्षकरों द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में यह स्वीकार किया गया है कि याची को जो तकनीकी रूप से अर्हित पाया गया था और जो निम्नतर बोलीकर्ता था और जिसने प्राक्कलित मूल्य से 8.22 प्रतिशत कम दर उद्धृत की थी, तथापि, आर. डब्ल्यू. खंड-II, कटक और अन्य कार्यों के अधीन सड़कों के निष्पादन के संबंध में याची के पूर्व कार्यों पर विचार करके जिसमें यह पाया गया था याची का कार्य धीमा है, याची को संविदा अधिनिर्णीत नहीं की गई । तथापि, इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि याची तकनीकी रूप से अर्हित पाया गया था ।

5. जब एक बार कोई पक्षकार तकनीकी रूप से अर्हित पाया गया हो और उसकी तकनीकी बोली खोल दी गई हो तो उसकी बोली उसके पूर्व प्रदर्शन के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती, जो कि संविदाकार को कोई आदेश पारित किए बिना और उसे सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना काली सूची में डालने के बराबर होगा । यदि याची के विरुद्ध धीमा कार्य करने के संबंध में कोई शिकायत या प्रतिकूल रिपोर्ट थी तो याची को सूचना देने के पश्चात् और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन के पश्चात् उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती थी । याची को संविदा अधिनिर्णीत किए जाने से वर्जित करना जबकि उसे तकनीकी रूप से अर्हित पाए जाने पर उसे निम्नतर बोलीकर्ता पाया गया था, विधि में न्यायोचित नहीं माना जा सकता । हम यह दोहरा सकते हैं कि ऐसा करना नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण किए बिना संविदाकार को काली सूची में रखने के बराबर होगा । यह भी कहा जा सकता है कि याची की बोली (जो निम्नतर थी) स्वीकार न करने के लिए विरोधी पक्षकार द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है और वे कारण भी जो केवल ऊपर उल्लिखित प्रति-शपथपत्र में उल्लिखित किए गए हैं, विधि में अनुज्ञेय नहीं हैं ।

6. उच्चतम न्यायालय ने **पुलिस आयुक्त, बाम्बे** बनाम **गोरधनदास**

भांजी[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "लोक आदेश (संविदाओं) का जो कानूनी प्राधिकार के प्रयोग में किए जाते हैं, आदेश देने वाले अधिकारी बाद में ऐसे स्पष्टीकरण नहीं दे सकते कि उससे यह अभिप्रेत था या उनके मस्तिष्क में यह था या वे यह करने के लिए आशयित थे । लोक प्राधिकारियों द्वारा दिए गए लोक आदेश लोक प्रयोजन के लिए अभिप्रेत होते हैं और वे उनके कार्य और आचरण को प्रभावित करने के लिए आशयित होते हैं जिनको कि वे संबोधित किए गए हैं और उनका स्वयं आदेश में प्रयुक्त भाषा के निर्देश में वस्तुपरक रूप से निर्वचन किया जाना चाहिए ।"

7. माननीय उच्चतम न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ ने **मोहिन्दर सिंह गिल** बनाम **मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नई दिल्ली**[2] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> " ………… जहां कोई कानूनी कृत्यकारी कतिपय आधारों पर आधारित कोई आदेश (मांग) करता है वहां इसकी विधिमान्यता की जांच उसमें उल्लिखित तर्कों द्वारा की जानी चाहिए और शपथ-पत्र के रूप में या अन्यथा नए कारणों द्वारा इसे अनुपूरित नहीं किया जा सकता । अन्यथा कोई आदेश आरंभ में ही गलत हो सकता है और किसी चुनौती के आधार पर न्यायालय में आने पर बाद में पेश किए गए अतिरिक्त आधारों द्वारा दूषित हो सकता है ।
>
> आदेश ऐसी पुरानी शराब के समान नहीं होते हैं जो समय वृद्धि के साथ बेहतर हो जाती है ।"

8. इसके अतिरिक्त विरोधी पक्षकारों ने प्रति-शपथपत्र में निविदा आमंत्रण सूचना के ऐसे किसी उपबंध का उल्लेख नहीं किया है जिसके अधीन दूसरे निम्नतर बोलीकर्ता को बातचीत के लिए बुलाया जा सकता हो । ऐसे किसी उपबंध के अभाव में दूसरे निम्नतर बोलीकर्ता से बातचीत विधि में अनुज्ञेय नहीं होगी । अतः हमारा यह निश्चित मत है कि विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा विरोधी पक्षकार सं. 3 को तारीख 18 मार्च, 2017 को भेजी गई सूचना पूर्णतया अनुचित होने के कारण अभिखंडित किए जाने योग्य है और तद्नुसार इसे अपास्त किया जाता है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 16.

[2] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 851.

9. वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए चूंकि याची को तकनीकी अर्हता मामले में उपयुक्त पाया गया था और वह निम्नतर बोलीकर्ता था और चूंकि उसकी बोली को खारिज करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, इसलिए याची को संविदा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए । तद्नुसार यह निदेश दिया जाता है कि राज्य-विरोधी पक्षकार सं. 2 को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से 15 दिवसों के भीतर संविदा अधिनिर्णीत करने के संबंध में विधि के अनुसरण में उपयुक्त आदेश पारित किया जाए ।

10. रिट याचिका मंजूर की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 150 **कर्नाटक**

वी. कृष्णप्पा

बनाम

जे. सी. गंगालक्ष्मय्या और अन्य

तारीख 17 मई, 2018

न्यायमूर्ति पी. एस. दिनेश कुमार

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 16(ग), 19 और 20 – विक्रय के लिए करार – विनिर्दिष्ट अनुपालन – विक्रेताओं द्वारा अग्रिम धनराशि के रूप में 15,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् नियत तारीख पर विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए एक विक्रेता द्वारा उप रजिस्ट्रार के कार्यालय न पहुंचना – वादी द्वारा शेष प्रतिफल धनराशि के साथ उप रजिस्ट्रार कार्यालय पहुंचना – क्रेता द्वारा विक्रेताओं को करार के अनुपालन के लिए सूचना जारी की जानी – विक्रेताओं द्वारा जवाबी सूचना के जरिए करार रद्द करने की सूचना दी जानी – विक्रेताओं द्वारा अन्य व्यक्ति के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन – वादी द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए फाइल किए गए वाद में विक्रेताओं

द्वारा कोई लिखित कथन फाइल न किया जाना – चूंकि विक्रेता और पश्चात्वर्ती क्रेता द्वारा असद्भाविक आशय से प्रथम क्रेता के करार को विफल करने का प्रयास किया गया है इसलिए पश्चात्वर्ती क्रेता को सद्भाविक क्रेता नहीं माना जा सकता – चूंकि क्रेता की तैयारी और इच्छा साबित हो गई है अतः वह विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री पाने का हकदार है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 (जिन्हें आगे संक्षेप में 'विक्रेता' के रूप निर्दिष्ट किया गया है) और वादी के बीच तारीख 8 जुलाई, 1996 को एक करार निष्पादित किया गया था जिसमें वाद की अनुसूची में उल्लिखित संपत्ति शुष्क भूमि जिसका माप 4 एकड़ 5 गुंठा है और जिसकी सर्वेक्षण सं. 42/3 है और जो ग्राम रायागांवहाली, कोठागेर हुबली, कुनीगल ताल्लुक में स्थित है, वादी के हक में एक लाख तीस हजार रुपए के प्रतिफल के बदले विक्रीत करने का करार किया गया था । वादी ने तारीख 23 सितंबर, 1996 को एक विधिक सूचना प्रदश पी. 2 जारी की जिसके द्वारा उसने प्रतिवादी सं. 1 से 4 से विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कहा । प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने तारीख 24 सितंबर, 1996 की विधिक सूचना द्वारा यह कथन करते हुए करार रद्द कर दिया कि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने में विफल रहा था । इस दौरान वादी ने विक्रेताओं के विरुद्ध तारीख 7 अक्तूबर, 1996 को वर्तमान वाद फाइल किया जिसमें उसने अन्य बातों के साथ-साथ विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादियों को निदेश करते हुए निर्णय और डिक्री पारित करने का अनुरोध किया । वादी ने वाद-पत्र में संशोधन करके यह घोषणा भी चाही कि पांचवें प्रतिवादी के हक में विक्रेताओं द्वारा तारीख 25 अक्तूबर, 1996 को निष्पादित विक्रय विलेख शून्य घोषित किया जाए और उक्त विक्रय विलेख वादी के ऊपर आबद्धकर नहीं है । पांचवें प्रतिवादी ने स्वयं ही वाद में पक्षकार बनाने के लिए अनुरोध किया । वादी की ओर से 5 साक्षियों की परीक्षा कराई गई थी और प्रदर्श पी. 1 से पी. 9 को चिह्नांकित किया गया था । प्रतिवादियों की ओर से किसी की परीक्षा नहीं कराई गई और न ही किसी प्रदर्श को चिह्नांकित किया गया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा वाद डिक्री कर दिया । पांचवें प्रतिवादी ने उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः विक्रेता तारीख 8 जुलाई, 1996 के करार द्वारा वाद अनुसूची के अन्तर्गत दी गई संपत्ति को 1,30,000/- रुपए के प्रतिफल

के बदले विक्रीत करने के लिए तैयार हुए थे और उन्होंने विक्रय प्रतिफल की अग्रिम धनराशि के रूप में 15,000/- रुपए प्राप्त किए थे । पी. डब्ल्यू. 1 ने अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि वह 1,15,000/- रुपए की शेष प्रतिफल धनराशि तारीख 2 सितंबर, 1996 को लेकर गया था । उसका यह साक्ष्य अखंडित रहा है । वादी की ओर से तारीख 23 सितंबर, 1996 को जारी की गई विधिक सूचना में यह कहा गया है कि चौथा प्रतिवादी तारीख 2 सितंबर, 1996 को उप रजिस्ट्रार के कार्यालय नहीं पहुंचा । उक्त सूचना की प्राप्ति के पूर्व ही विक्रेताओं ने तारीख 24 सितंबर, 1996 को यह कहते हुए वादी को एक सूचना भेजी थी कि करार रद्द कर दिया गया है क्योंकि वादी प्रतिफल की शेष धनरशि का संदाय करने में विफल रहा है । अभिलेख से यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने मुंसिफ के न्यायालय में 1996 का केवियट आवेदन सं. 176 फाइल किया था और तारीख 24 सितंबर, 1996 को सिविल न्यायाधीश, टुमकूर के न्यायालय में 1996 का केवियट आवेदन सं. 223 फाइल किया गया था । प्रतिवादी सं. 5 ने भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन अंतरिम आवेदन सं. 3 फाइल करके स्वयं को पक्षकार बनाया था क्योंकि यह आवेदन तारीख 6 फरवरी, 1999 को मंजूर कर लिया गया था । प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । प्रतिवादी सं. 5 ने विक्रेताओं और वादी के बीच किसी भी करार से इनकार करते हुए संक्षिप्त लिखित कथन फाइल किया है और उसमें यह कहा है कि वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है । विक्रेताओं द्वारा वाद अनुसूची के अधीन संपत्ति के विक्रय के लिए किया गया करार विवादित नहीं है । वादी की ओर से जारी की गई विधिक सूचना में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वादी ने प्रतिवादी सं. 1 से 4 को तारीख 2 सितंबर, 1996 को उप रजिस्ट्रार के कार्यालय बुलाया था तथापि, विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जा सका क्योंकि प्रतिवादी सं. 4 उक्त कार्यालय नहीं पहुंचा । वादी ने तारीख 7 अक्तूबर, 1996 को वर्तमान मामला फाइल किया, उस समय तक विक्रेताओं ने केवियट आवेदन फाइल कर दिए थे और तत्पश्चात् उन्होंने तारीख 25 अक्तूबर, 1996 को पांचवें प्रतिवादी के हक में विक्रय विलेख निष्पादित किया था । वे विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए थे तथापि, उन्होंने अपने-अपने लिखित कथन फाइल नहीं किए । अतः विक्रेता वादी की दलीलों को विफल करने में सफल नहीं हुए हैं । अतः वादी ने यह साबित कर दिया है कि उसने विक्रय विलेख कराने

के लिए सभी प्रयत्न किए थे । अतः न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन किया है । प्रतिवादी सं. 1 से 4 अनुपस्थित रहे हैं । केवल प्रतिवादी सं. 5 ने विक्रेताओं और वादी के बीच करार होने से इनकार किया है ; और केवल यह कहा है कि वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है । प्रतिवादियों की ओर से किसी साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई है । अभिलेख पर के तथ्यों से यह प्रकट होता है कि विक्रेताओं ने यह सुनिश्चित करने के लिए सतर्कतापूर्वक प्रयास किए हैं कि वादी केवियट आवेदन फाइल करके उनके विरुद्ध कोई व्यादेश प्राप्त न कर सके । करार के निष्पादन के लिए वाद लगभग 3 मास की अल्पावधि के भीतर फाइल किया गया है । अतः अभिलेख पर के अभिवचनों और साक्ष्य की पुनः परीक्षा करने पर स्पष्ट रूप से निम्नलिखत निष्कर्ष निकलता है – (1) करार साबित हो गया है ; (2) क्रेता की तैयारी और इच्छा साबित हो गई है ; (3) विक्रेताओं और पांचवें प्रतिवादी ने असद्भाविक आशय से वादी के हक़ में निष्पादित करार को विफल करने के लिए संयुक्त प्रयास किए हैं ; और (4) विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अनुरोध मंजूर करने के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 के अधीन विवेक का सही प्रयोग किया है । अतः विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । (पैरा 12, 13, 17, 18, 19 और 20)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की नियमित प्रथम अपील सं. 1330.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एन. मनोहर

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जी. एस. बालगंगाधर और मैसर्स कारनेटिक ला एसोसिएट्स

न्यायमूर्ति पी. एस. दिनेश कुमार – पंचम प्रतिवादी द्वारा यह अपील 2001 के मूल वाद सं. 92 में सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), कुनीगल की फाइल पर तारीख 29 अगस्त, 2006 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. सुविधा की दृष्टि से पक्षकारों को विचारण न्यायालय के समक्ष उनकी प्रास्थिति के अनुसार निर्दिष्ट किया गया है ।

3. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री एन. मनोहर और प्रत्यर्थी की ओर से श्री जी. एस. बालगंगाधर को सुना गया ।

4. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 (जिन्हें आगे संक्षेप में 'विक्रेता' के रूप निर्दिष्ट किया गया है) और वादी के बीच तारीख 8 जुलाई, 1996 को एक करार निष्पादित किया गया था जिसमें वाद की अनुसूची में उल्लिखित संपत्ति शुष्क भूमि जिसका माप 4 एकड़ 5 गुंठा है और जिसकी सर्वेक्षण सं. 42/3 है और जो ग्राम रायागांवहाली, कोठागेर हुबली, कुनीगल ताल्लुक में स्थित है, वादी के हक में एक लाख तीस हजार रुपए के प्रतिफल के बदले विक्रीत करने का करार किया गया था । वादी ने तारीख 23 सितंबर, 1996 को एक विधिक सूचना प्रदर्श पी. 2 जारी की जिसके द्वारा उसने प्रतिवादी सं. 1 से 4 से विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कहा । प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने तारीख 24 सितंबर, 1996 की विधिक सूचना द्वारा यह कथन करते हुए करार रद्द कर दिया कि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने में विफल रहा था ।

5. प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने तारीख 25 अक्तूबर, 1996 को पांचवें प्रतिवादी के हक में विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया ।

6. इस दौरान वादी ने विक्रेताओं के विरुद्ध तारीख 7 अक्तूबर, 1996 को वर्तमान वाद फाइल किया जिसमें उसने अन्य बातों के साथ-साथ विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादियों को निदेश करते हुए निर्णय और डिक्री पारित करने का अनुरोध किया । वादी ने वादपत्र में संशोधन करके यह घोषणा भी चाही कि पांचवें प्रतिवादी के हक में विक्रेताओं द्वारा तारीख 25 अक्तूबर, 1996 को निष्पादित विक्रय विलेख शून्य घोषित किया जाए और उक्त विक्रय विलेख वादी के ऊपर आबद्धकर नहीं है । पांचवें प्रतिवादी ने स्वयं ही वाद में पक्षकार बनाने के लिए अनुरोध किया ।

7. वादी की ओर से 5 साक्षियों की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श पी. 1 से पी. 9 को चिह्नांकित किया गया था । प्रतिवादियों की ओर से किसी की परीक्षा नहीं कराई गई और न ही किसी प्रदर्श को चिह्नांकित किया गया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा वाद डिक्री कर दिया । पांचवें प्रतिवादी ने उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री एन. मनोहर ने यह दलील दी है कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री अनेक कारणों से विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । प्रथमतः चूंकि वादी ने संविदा के अपने भाग का अनुपालन नहीं किया है और इसलिए करार को रद्द कर दिया गया था । विक्रेताओं द्वारा उक्त तथ्य के बारे में विधिक सूचना प्रदर्श पी. 7 भेजी गई थी । द्वितीयतः यद्यपि प्रतिवादी सं. 5 ने अपना लिखित कथन फाइल किया था तथापि, उसे वादी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने के लिए और अपना साक्ष्य पेश करने के लिए समुचित अवसर नहीं दिया गया था । तृतीयतः पांचवां प्रत्यर्थी प्रभावी रूप से वाद का विरोध करने में समर्थ नहीं हो सका क्योंकि उसके भाई की मृत्यु के कारण उसके कुटुम्ब में मातम छा गया था । अतः वह अपने अधिवक्ता को न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए आवश्यक निदेश नहीं दे सका । अतः उसे वाद का प्रभावी रूप से विरोध करने के लिए निवारित किया गया था । चतुर्थतः प्रतिवादी सं. 5 एक सद्भाविक क्रेता है और यदि आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है तो उसे अपूर्णनीय क्षति होगी ।

9. वादी के विद्वान् काउंसेल श्री जी. एस. बालगंगाधर ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री का बलपूर्वक समर्थन करते हुए यह दलील दी है कि विक्रेताओं ने तारीख 8 जुलाई, 1996 को वाद सूची में उल्लिखित संपत्ति एक लाख 30 हजार रुपए के बदले विक्रीत करने का करार निष्पादित किया था और वे भागतः प्रतिफल के रूप में 15,000/- रुपए प्राप्त करने के बावजूद विक्रय विलेख निष्पादित करने में विफल रहे । उन्होंने इस दलील को विस्तार देते हुए यह तर्क दिया है कि वादी ने तारीख 2 सितंबर, 1996 को विक्रेताओं को उप रजिस्ट्रार के कार्यालय में उपस्थित होने के लिए बुलाया था तथापि, प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 वहां आए । प्रतिवादी सं. 4 के बारे में यह बताया गया कि वह बीमार था । अतः विक्रय विलेख निष्पादित नहीं हो सका । जब वादी ने बाद में विक्रेताओं को विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए बुलाया तो उन्होंने उसके अनुरोध को ठुकरा दिया जिसके कारण वह विधिक सूचना भेजने के लिए बाध्य हुआ । विक्रेताओं ने अगले ही दिन यह उल्लेख करते हुए वादी को एक विधिक सूचना भेजी कि वादी की ओर से संविदा के अननुपालन के कारण करार रद्द कर दिया गया था ।

10. श्री बालगंगाधर ने यह भी दलील है कि यद्यपि वादी ने वाद

तारीख 7 अक्तूबर, 1996 को प्रस्तुत किया था तथापि, वह वाद अनुसूची में दी गई संपत्ति को विक्रेताओं द्वारा अंतरण करने से रोकने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अपने आवेदन पर कोई अंतरिम आदेश प्राप्त नहीं कर सका क्योंकि विक्रेताओं ने विचारण न्यायालय में एक केवियट आवेदन फाइल कर दिया था । अतः विक्रेताओं को सभी संवृद्धियों के बारे में पूर्ण जानकारी थी । वे तारीख 25 अक्तूबर, 1996 को पांचवें प्रतिवादी के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन करने के पश्चात् तारीख 26 अक्तूबर, 1996 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए थे । उन्होंने यह दलील दी है कि निरंतर घटनाओं से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी सं. 5 के हक में किया गया विक्रय विलेख एक कपटपूर्ण दस्तावेज है जिसका सृजन वादी के अधिकारों को विफल करने के लिए किया गया है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि कुटुम्ब में शोक के आधार पर दी गई दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि उसके भाई की मृत्यु तारीख 18 अप्रैल, 2004 को हुई थी जबकि वादी की ओर से साक्ष्य उसके दो वर्ष के पश्चात् तारीख 2 अगस्त, 2006 को अभिलिखित किया गया था । इसके अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने अपने-अपने लिखित कथन फाइल करना पसन्द नहीं किया । उन्होंने यह दलील दी है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रत्येक प्रतिवादी का आचरण संदेहास्पद है और इसलिए उन्होंने अपील की खारिजी के लिए अनुरोध के साथ अपनी दलीलें समाप्त की हैं ।

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर सतर्कतापूर्वक विचार किया और अभिलेखों का परिशीलन किया ।

12. स्वीकृततः विक्रेता तारीख 8 जुलाई, 1996 के करार द्वारा वाद अनुसूची के अन्तर्गत दी गई संपत्ति को 1,30,000/- रुपए के प्रतिफल की बदले विक्रीत करने के लिए तैयार हुए थे और उन्होंने विक्रय प्रतिफल की अग्रिम धनराशि के रूप में 15,000/- रुपए प्राप्त किए थे । पी. डब्ल्यू. 1 ने अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि वह 1,15,000/- रुपए की शेष प्रतिफल धनराशि तारीख 2 सितंबर, 1996 को लेकर गया था । उसका यह साक्ष्य अखंडित रहा है । वादी की ओर से तारीख 23 सितंबर, 1996 को जारी की गई विधिक सूचना में यह कहा गया है कि चौथा प्रतिवादी तारीख 2 सितंबर, 1996 को उप रजिस्ट्रार के कार्यालय नहीं पहुंचा । उक्त सूचना की प्राप्ति के पूर्व ही विक्रेताओं ने तारीख 24 सितंबर,

1996 को यह कहते हुए वादी को एक सूचना भेजी थी कि करार रद्द कर दिया गया है क्योंकि वादी प्रतिफल की शेष धनराशि का संदाय करने में विफल रहा है ।

13. अभिलेख से यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने मुंसिफ के न्यायालय में 1996 का केवियट आवेदन सं. 176 फाइल किया था और तारीख 24 सितंबर, 1996 को सिविल न्यायाधीश, टुमकूर के न्यायालय में 1996 का केवियट आवेदन सं. 223 फाइल किया गया था । प्रतिवादी सं. 5 ने भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन अंतरिम आवेदन सं. 3 फाइल करके स्वयं को पक्षकार बनाया था क्योंकि यह आवेदन तारीख 6 फरवरी, 1999 को मंजूर कर लिया गया था । प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । प्रतिवादी सं. 5 ने विक्रेताओं और वादी के बीच किसी भी करार से इनकार करते हुए संक्षिप्त लिखित कथन फाइल किया है और उसमें यह कहा है कि वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है ।

14. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"(1) क्या वादी ने यह साबित कर दिया है कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 वाद अनुसूची के अधीन संपत्ति को 1,30,000/- रुपए के प्रतिफल के बदले विक्रीत करने के लिए और विक्रय प्रतिफल की अग्रिम धनराशि के रूप में 15,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 8 जुलाई, 1996 को विक्रय करार निष्पादित करने के लिए सहमत हुए थे ?

(2) क्या वादी ने यह साबित कर दिया है कि वह संविदा के अधीन अपने दायित्व को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा था ?

(3) क्या वादी ने यह साबित कर दिया है कि तारीख 18 अक्तूबर, 1995 का विक्रय करार और प्रतिवादी सं. 1 से 4 द्वारा पांचवें प्रतिवादी के हक में तारीख 29 अक्तूबर, 1996 को रजिस्ट्रीकृत कराया गया विक्रय करार विधि की दृष्टि में अवैध, अकृत और शून्य है और इसलिए वादी पर आबद्धकर नहीं है ?

(4) क्या वादी वाद में दावा किए गए अनुतोष को पाने का

हकदार है ?

(5) क्या आदेश और डिक्री पारित की जाए ?"

15. विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 से 4 का सकारात्मक रूप में उत्तर देते हुए वाद डिक्री कर दिया ।

16. उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय के विचारार्थ निम्नलिखित बिन्दु उद्भूत हुए हैं :–

(क) क्या वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने में विफल रहा है ?

(ख) क्या अपीलार्थी-पांचवां प्रतिवादी एक सद्भाविक क्रेता है ?

(ग) क्या आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता है ?

बिन्दु (क)

17. विक्रेताओं द्वारा वाद अनुसूची के अधीन संपत्ति के विक्रय के लिए किया गया करार विवादित नहीं है । वादी की ओर से जारी की गई विधिक सूचना में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वादी ने प्रतिवादी सं. 1 से 4 को तारीख 2 सितंबर, 1996 को उप रजिस्ट्रार के कार्यालय बुलाया था तथापि, विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जा सका क्योंकि प्रतिवादी सं. 4 उक्त कार्यालय नहीं पहुंचा । वादी ने तारीख 7 अक्तूबर, 1996 को वर्तमान मामला फाइल किया, उस समय तक विक्रेताओं ने केवियट आवेदन फाइल कर दिए थे और तत्पश्चात् उन्होंने तारीख 25 अक्तूबर, 1996 को पांचवें प्रतिवादी के हक में विक्रय विलेख निष्पादित किया था । वे विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए थे तथापि, उन्होंने अपने-अपने लिखित कथन फाइल नहीं किए । अतः विक्रेता वादी की दलीलों को विफल करने में सफल नहीं हुए हैं । अतः वादी ने यह साबित कर दिया है कि उसने विक्रय विलेख कराने के लिए सभी प्रयत्न किए थे । अतः मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन किया है ।

बिन्दु (ख)

18. प्रतिवादी सं. 1 से 4 अनुपस्थित रहे हैं । केवल प्रतिवादी सं. 5 ने विक्रेताओं और वादी के बीच करार होने से इनकार किया है ; और केवल यह कहा है कि वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है । प्रतिवादियों की ओर से किसी साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई है । अभिलेख पर के

तथ्यों से यह प्रकट होता है कि विक्रेताओं ने यह सुनिश्चित करने के लिए सतर्कतापूर्वक प्रयास किए हैं कि वादी केवियट आवेदन फाइल करके उनके विरुद्ध कोई व्यादेश प्राप्त न कर सके । करार के निष्पादन के लिए वाद लगभग 3 मास की अल्पावधि के भीतर फाइल किया गया है । इसके अतिरिक्त विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "12. .... पी. डब्ल्यू. 1 से 6 के साक्ष्य और प्रदर्श पी-1 से पी-8 से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि चूंकि प्रतिवादी सं. 1 से 4 वाद संपत्ति के स्वामी और काबिज़ हैं और उसका उपभोग कर रहे हैं इसलिए उन्होंने पी. डब्ल्यू. 2 से 6 की उपस्थिति में प्रदर्श पी. 1 निष्पादित किया है और उन्होंने अग्रिम धन के रूप में 15,000/- रुपए की धनराशि प्राप्त की है और उन्होंने तारीख़ 2 सितंबर, 1996 तक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पदित करने की सहमति दी थी । प्रतिवादी बार-बार कहे जाने और विधिक सूचना जारी करने के बावजूद न तो रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख का निष्पादन करने के लिए आए और न ही उन्होंने शेष प्रतिफल धनराशि प्राप्त की । वादी का आचरण स्पष्टतया यह प्रकट करता है कि वह दायित्व के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा है । इसके प्रतिकूल प्रतिवादी सं. 1 से 4 प्रदर्श पी. 1 के निबंधनों और शर्तों के अनुसार अपने दायित्व को पूरा करने में विफ़ल रहे हैं । वादी ने प्रदर्श पी. 1 के निष्पादन को और प्रतिवादी सं. 1 से 4 द्वारा विक्रय प्रतिफल की अग्रिम धनराशि की प्राप्ति को पूर्ण रूप से साबित कर दिया है । अतः मैं विवाद्यक सं. 1 और 2 का सकारात्मक उत्तर अवधारित करता हूं ।"

उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी-पांचवें प्रतिवादी को सद्भाविक क्रेता नहीं माना जा सकता ।

बिन्दु (ग)

19. अतः अभिलेख पर के अभिवचनों और साक्ष्य की पुनः परीक्षा करने पर स्पष्ट रूप से निम्नलिखत निष्कर्ष निकलता है :–

(1) करार साबित हो गया है ;

(2) क्रेता की तैयारी और इच्छा साबित हो गई है ;

(3) विक्रेताओं और पांचवें प्रतिवादी ने असद्‌भाविक आशय से वादी के हक़ में निष्पादित करार को विफल करने के लिए संयुक्त प्रयास किए हैं ; और

(4) विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अनुरोध मंजूर करने के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 के अधीन विवेक का सही प्रयोग किया है ।

20. अतः विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

21. परिणामतः यह अपील विफ़ल होती है और तद्‌नुसार खारिज की जाती है ।

22. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 160 **कलकत्ता**

सुभाष राय

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

तारीख 6 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति हरीश टंडन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 142 और अनुच्छेद 226 – उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के निर्णय – निर्वचन – प्रवर्तन – बार के सदस्यों द्वारा उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के निर्णयों का संपूर्णतः और सही परिप्रेक्ष्य में निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि तर्कयुक्त बहस हो सके और मुकदमेदारों के साथ उचित न्याय हो सके ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 96 [सपठित पश्चिमी बंगाल मोटर यान नियम, 1989 का नियम 141] – नए रूट पर

परमिट – छह मास से अधिक परमिट का विस्तार – विधिमान्यता – रिट याची द्वारा विस्तार को नियमों के विरुद्ध बताते हुए आक्षेपित किया जाना – चूंकि नियमों में छह मास से अधिक अवधि के लिए परमिट का विस्तार किया जाना अनुज्ञेय नहीं है – अतः प्राधिकारियों द्वारा किया गया ऐसा विस्तार अविधिमान्य माना जाएगा ।

याची ने, जिसने स्वयं को स्थायी मंजिली गाड़ी परमिट के आधार पर रूट सं. 81 और 81/1 का वर्तमान आपरेटर होने का दावा किया है, प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों की उस कार्रवाई को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा उन्होंने प्रस्तावित अवधि को बढ़ाते हुए पश्चिमी बंगाल मोटर यान नियम, 1989 के नियम 141 के अधीन उपबंधित समय-सीमा के परे प्रत्यर्थी सं. 6 को प्रस्ताव-पत्र जारी किया है । रिट याचिका तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय यह उल्लेख करना चाहेगा कि बार में यह अध्ययन किए बिना विधि की सही प्रतिपादना पर विभिन्न उच्च न्यायालयों तथा उच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों और/या विनिश्चयों को उद्धृत करने में यह परिपाटी विकसित हो गई है कि क्या इन मामलों के तथ्यों वर्तमान मुकदमेदारी में अन्तर्वलित तथ्यों को समान माना जा सकता है । निर्णय विधि की इस प्रतिपादना की ओर ध्यान दिए बिना उद्धृत किए गए हैं कि क्या विनिश्चय में अन्तर्वलित तथ्यों के आधार पर ऐसे मामले का विनिश्चय किया गया है । संपूर्ण निर्णय से एक वाक्य को अलग करते हुए और/या निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय में इस अर्थ पर ध्यान रखने का प्रयास किया गया है कि भले ही उक्त निर्णय में अभिव्यक्त मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता तथापि, बार के सदस्यों को इस दायित्व का ध्यान रखना चाहिए कि वे ऐसी उच्च स्थिति रखते हैं और न्यायालय के अधिकारी हैं और इस कठिन प्रणाली में न्याय प्रदान करने के महत्वपूर्ण अंग के रूप में हैं । यदि बार के सदस्यों में उच्च दायित्व की भावना उत्पन्न होती है और मामले में सही निष्कर्ष निकलता है तो न केवल विस्तृत दलीलों से बचा जाएगा अथवा कीमती समय भी बर्बाद नहीं होगा और सही निर्णय किए जाएंगे जिनका अंततः उन मुकदमेदारों पर प्रभाव होगा जिन्होंने अपनी शिकायत के प्रतितोष के लिए न्यायालय में समावेदन किया है । उस मुद्दे को जो लगभग विनिश्चित प्रतीत होता है, अविनिश्चित बताते हुए न्यायालय के समक्ष उद्धृत प्रत्येक निर्णय पर निश्चित रूप से विचार करने के लिए प्रयास किया गया है और निर्णय को विस्तृत बनाने का प्रयास किया गया

है, यद्यपि उसे अधिक प्रबुद्ध और सही रीति में विनिश्चित किया जा सकता है क्योंकि इस मुद्दे को पहले ही इस न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है । यह न्यायालय इस बात के लिए पूर्णतया आशान्वित है कि बार के सदस्यों के बीच बेहतर समझ विद्यमान होगी और इसलिए तर्कयुक्त बहस होगी और वे मुद्दे जो मुकदमेदारी में अन्तर्वलित हैं, विचार में लिए जाएंगे और बहस उसी मुद्दे पर होगी । इस प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता कि जब तक कोई व्यक्ति किसी अधिकार के विधिक भंग या अतिक्रमण के बारे में समाधान नहीं कर देता, उसकी ओर से लोक हित मुकदमेदारी के अतिरिक्त कोई कार्यवाही ग्रहण नहीं की जा सकती । सुने जाने के अधिकार के बारे में अभिवाक् पर विभिन्न विधिक निर्णयों में विचार किया गया है और अत्यावश्यकताओं को पूरा करने के लिए समय-समय पर सुधार किया गया है और इस प्रकार अधिनियमिती में भी परिवर्तन किया गया है । यदि कोई मुद्दा प्रत्यक्ष रूप से उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय से विनियमित होता है और यदि न्यायाधीश द्वारा प्रतिकूल मत लेना प्रतीत नहीं होता है या वह ऐसे निर्णय में अपनाए गए मत से असहमत नहीं होता है तो न्यायिक प्रशासन से यह अपेक्षित है कि उसे उस निर्णय का जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव है, सम्मान करना चाहिए । तथापि, उस दशा में जहां न्यायाधीश को यह प्रतीत होता है कि ऐसे निर्णय में विभिन्न पहलुओं पर विचार नहीं किया गया है या वह हर पहलू पर विचार करने के पश्चात् ऐसे विनिश्चय से सहमत होने में असमर्थ है तब न्यायाधीश इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह मामले को मुख्य न्यायमूर्ति को वृहत्तर न्यायपीठ गठित करने के लिए निर्दिष्ट करे । (पैरा 7, 8, 13 और 14)

उक्त नियम के परंतुक के साथ नियम का निर्वचन करने पर इस बारे में कोई अस्पष्टता नहीं रह जाती कि प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता के लिए ऊपरी सीमा या अधिकतम सीमा छह मास के लिए नियत की गई है । संबंधित उपबंध यह उल्लेख करता है कि प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता एक मास से परे नहीं होनी चाहिए और इसका परंतुक प्राधिकारियों को ऊपरी सीमा के लिए समय विस्तारित करने के लिए सशक्त करता है तथापि, केवल आपवादिक मामलों में और जिसमें लिखित में कारण अभिलिखित किए जाएं और यह नियम प्राधिकारियों द्वारा किसी कारण या परिस्थितियों के बारे में उल्लेख किए बिना एक मास के परे प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता

अवधि विस्तारित करने में सामान्य रीति में शक्ति का प्रयोग करने से विवर्जित करता है और ऐसी परिस्थितियां आपवादिक और असाधारण प्रकृति की होनी चाहिए और जहां कानूनी नियम किसी विशिष्ट रीति में शक्ति का प्रयोग करने के बारे में उपबंध करते हों वहां प्राधिकारी इसका कड़ाई से पालन न करने में अपनी जिम्मेदारियों से नहीं बच सकते । भले ही इस न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि प्राधिकारियों द्वारा विस्तार मंजूर किया गया था (यद्यपि किसी आपवादिक और असाधारण परिस्थिति का और कारण का उल्लेख नहीं किया गया है) तथापि, प्राधिकारी इस नियम के परंतुक में उपबंधित ऊपरी सीमा के परे नहीं जा सकते । विधि यह है कि कोई व्यक्ति ऐसी कोई बात कर सकता है जब तक कि विधि द्वारा ऐसा करना प्रतिषिद्ध न हो ; इसके प्रतिकूल कानूनी प्राधिकारी ऐसी चीज नहीं कर सकते जब तक कि विधि के अधीन उपबंधित न किया गया हो । कानूनी प्राधिकारी दस्तावेजों के आधार पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हैं जो कानून के अन्तर्गत हैं और इसलिए वे अपनी सीमा के बाहर नहीं जा सकते । कानूनी प्राधिकारियों को विधि की सीमा के भीतर ही कार्रवाई करनी चाहिए क्योंकि शक्ति के बाह्य की गई कोई कार्रवाई न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को आमंत्रित करती है और वहां किसी व्यक्ति को कोई अधिकार अर्जित नहीं होता जहां प्राधिकारियों द्वारा अवैध और गलत आदेश पारित किए गए हों । ऊपर अभिलिखित निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए प्राधिकारी प्रस्ताव-पत्र की अवधि की विधिमान्यता को इसके जारी करने की तारीख से एक मास से परे विस्तारित नहीं कर सकते जब तक कि आपवादिक और असाधारण परिस्थितियां मौजूद न हों, बशर्ते कि लिखित में कारणों का उल्लेख किया जाए और यह अवधि भी छह मास से अधिक नहीं हो सकती । जहां नियम छह मास के परे समय विस्तारित करने के लिए उपबंध नहीं करते जो कि अधिकतम सीमा है वहां प्राधिकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते और न ही इसके परे कार्रवाई कर सकते हैं क्योंकि वे उक्त उपबंध की सीमाओं के भीतर कार्य करने के लिए आबद्ध हैं । जहां कानूनी प्राधिकारियों की कार्रवाई सुस्पष्टतया कानूनी नियमों के अधीन दी गई शक्ति के परे हैं वहां ऐसी कार्रवाई स्पष्टतया अवैध है और इसलिए उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसे विनिश्चय को अभिखंडित करने और अपास्त करने के लिए कोई बाधा नहीं है । स्वीकृततः प्रत्यर्थियों को तारीख 14 दिसंबर, 2016 को प्रस्ताव-पत्र जारी किया गया था और इसकी वैधता

अवधि वर्ष 2018 में भी समय-समय पर विस्तारित की गई थी । प्राधिकारियों का उक्त विनिश्चय स्पष्ट रूप से नियम 141 के अधीन उल्लिखित उपबंधों के प्रतिकूल है और इसलिए इसे विधिमान्य नहीं माना जा सकता । प्रस्ताव-पत्र जारी करने की तारीख से छह मास के परे विधिमान्यता अवधि को विस्तारित करने का विनिश्चय प्रथम दृष्टि में ही अवैध और अनियमित है और उक्त नियम के उपबंधों के प्रतिकूल है । प्रत्यर्थियों को जारी प्रस्ताव-पत्र और समय-समय पर उसका छह मास की अवधि के लिए विस्तार विधिमान्य होना घोषित किया जाता है और इस अवधि के परे कोई विस्तार अवैध और शून्य है तथा एतद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । (पैरा 19, 20, 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	ए. आई. आर. 2015 कलकत्ता 112 : **प्रभात पान और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य ;**	6, 15
[1984]	ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1572 = (1984) 4 एस. सी. सी. 103 : **जे. महापात्र एंड कंपनी और एक अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य और एक अन्य ;**	5, 12
[1977]	ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 876 = (1977) 2 एस. सी. सी. 148 : **डी. नागराज और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य ;**	5, 11
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 964 = (1973) 1 एस. सी. सी. 485 : **डा. उमाकांत सरन** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ।	5

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका सं 13517.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री शंकर नाथ मुखर्जी, सुश्री सुनयना परवीन और सुश्री सरीना खातून

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री श्रीजन नायक, (सुश्री) ऋतुपर्णा मैत्रा, नीलादरी भट्टाचार्या, अंजन भट्टाचार्या, (सुश्री) मीनाक्षी घोष, प्रोजीत दत्त, दिलीप कुमार सांमता और (सुश्री) विश्वप्रिया सांमता

न्यायमूर्ति हरीश टंडन – याची ने, जिसने स्वयं को स्थायी मंजिली गाड़ी परमिट के आधार पर रूट सं. 81 और 81/1 का वर्तमान आपरेटर होने का दावा किया है, प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों की उस कार्रवाई को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा उन्होंने प्रस्तावित अवधि को बढ़ाते हुए पश्चिमी बंगाल मोटर यान नियम, 1989 (जिन्हें आगे संक्षेप में 'उक्त नियम' कहा गया है) के नियम 141 के अधीन उपबंधित समय-सीमा के परे प्रत्यर्थी सं. 6 को प्रस्ताव-पत्र जारी किया है ।

2. यद्यपि रिट याचिका में ये प्रकथन किए गए हैं कि आरंभतः प्रत्यर्थी सं. 7 संगम द्वारा आवेदन आमंत्रित किए गए थे तथापि, याची द्वारा उक्त प्रत्यर्थी के समक्ष फाइल किए गए आवेदन पर विचार और/या कार्रवाई नहीं की गई और यह पाया गया कि प्रत्यर्थी सं. 6 द्वारा जिसने संगम के समक्ष आवेदन फाइल किया था, नए अधिसूचित रूट अर्थात् रूट सं. 81/1 के लिए उक्त परमिट की मंजूरी के लिए प्रस्ताव-पत्र जारी करने में पक्षपात किया गया ।

3. इस संबंध में किसी भ्रम को दूर करने के लिए पूर्व में विभिन्न आपरेटरों को रूट सं. 81 और 81/1 का संयुक्त परमिट जारी किया गया था और बाद में प्राधिकारियों ने यह विनिश्चय किया कि केवल नए अधिसूचित रूट अर्थात् 81/1 के लिए परमिट जारी किया जाए और ऐसा प्रतीत होता है कि केवल आवेदक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 6 ने प्राधिकारियों के समक्ष एकमात्र आवेदन फाइल किया था । यह आवश्यक नहीं है कि वर्तमान रिट याचिका में उल्लिखित तथ्यों पर विस्तार से विचार किया जाए क्योंकि विधि का प्रश्न जो उद्भूत हुआ है, ऊपर उल्लिखित तथ्यों के आधार पर आसानी से विनिश्चित किया जा सकता है ।

4. प्रत्यर्थी सं. 6 द्वारा यह प्रारंभिक मुद्दा उठाया गया है कि याची को उस रिट याचिका को फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों की प्रस्ताव-पत्र की अवधि को बढ़ाने की कार्रवाई को आक्षेपित किया गया है क्योंकि वह वर्तमान आपरेटर नहीं है । प्रत्यर्थी-

प्राधिकारियों ने यह विवाद नहीं किया है कि याची के पास संयुक्त रूट अर्थात् रूट सं. 81 और 81/1 के लिए मंजिली गाड़ी का परमिट नहीं है । याची ने रिट याचिका में स्पष्ट रूप से यह कहा है कि वह उक्त रूट पर भी एक आपरेटर है और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 6 ने तथ्यात्मक रूप से गलत बयानी की है ।

5. प्रथमतः प्रत्यर्थी सं. 5 की दलील उच्चतम न्यायालय की सांविधानिक पीठ द्वारा **डा. उमाकांत सरन** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय पर आधारित है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्राधिकारियों को कानून द्वारा उन्हें सौंपे गए कर्तव्यों को पूरा करने के लिए बाध्य करने हेतु परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती जब तक कि न्यायालय में समावेदन करने वाला व्यक्ति यह समाधान नहीं कर देता कि यह उनका विधिक कर्तव्य है और/या उसे अधिकार प्राप्त है और उसके अधिकार में अतिक्रमण किया गया है । उक्त प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने यह भी दलील दी है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो व्यथित पक्षकार नहीं है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल नहीं कर सकता जैसाकि **डी. नागराज और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । विद्वान् अधिवक्ता ने यह भी दलील दी है कि सुने जाने के अधिकार की संकल्पना समय के साथ बदल गई है जहां लोक हित सोच वाले व्यक्ति द्वारा मुकदमेदारी की जाती है वहां ऐसी मुकदमेदारी में यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति का मामले में अपना कोई हित होना चाहिए अर्थात् यदि प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों पर परमादेश जारी करने के लिए कोई रिट याचिका फाइल की जाती है तो उसे यह उपदर्शित करना चाहिए कि वह मामले में हितबद्ध है और उन्होंने इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा **जे. महापात्र एंड कंपनी और एक अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य और एक अन्य**[3] वाले मामले के निर्णय का अवलंब लिया है ।

6. इसके प्रतिकूल याची के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि वह संयुक्त रूट पर एक वर्तमान आपरेटर है और उसने प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों की कार्रवाई को तब आक्षेपित किया जब उन्होंने उक्त नियमों के अधीन

---

[1] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 964 = (1973) 1 एस. सी. सी. 485.

[2] ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 876 = (1977) 2 एस. सी. सी. 148.

[3] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1572 = (1984) 4 एस. सी. सी. 103.

अपनी कानूनी शक्तियों के परे कार्य किया और इसलिए याची को वर्तमान कार्यवाही में सुने जाने का अधिकार है । उन्होंने **प्रभात पान और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि नए आपरेटर के परमिट की मंजूरी को आक्षेपित करने वाली रिट याचिका को ग्रहण करने के लिए वर्तमान आपरेटर को सुने जाने के समान प्रश्नों पर निर्देश किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि रिट याचिका पूर्ण रूप से ग्रहण किए जाने योग्य है ।

7. यह न्यायालय यह उल्लेख करना चाहेगा कि बार में यह अध्ययन किए बिना विधि की सही प्रतिपादना पर विभिन्न उच्च न्यायालयों तथा उच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों और/या विनिश्चयों को उद्धृत करने में यह परिपाटी विकसित हो गई है कि क्या इन मामलों के तथ्यों वर्तमान मुकदमेदारी में अन्तर्वलित तथ्यों को समान माना जा सकता है । निर्णय विधि की इस प्रतिपादना की ओर ध्यान दिए बिना उद्धृत किए गए हैं कि क्या विनिश्चय में अन्तर्वलित तथ्यों के आधार पर ऐसे मामले का विनिश्चय किया गया है । संपूर्ण निर्णय से एक वाक्य को अलग करते हुए और/या निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय में इस अर्थ पर ध्यान रखने का प्रयास किया गया है कि भले ही उक्त निर्णय में अभिव्यक्त मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता तथापि, बार के सदस्यों को इस दायित्व का ध्यान रखना चाहिए कि वे ऐसी उच्च स्थिति रखते हैं और न्यायालय के अधिकारी हैं और इस कठिन प्रणाली में न्याय प्रदान करने के महत्वपूर्ण अंग के रूप में हैं । यदि बार के सदस्यों में उच्च दायित्व की भावना उत्पन्न होती है और मामले में सही निष्कर्ष निकलता है तो न केवल विस्तृत दलीलों से बचा जाएगा अथवा कीमती समय भी बर्बाद नहीं होगा और सही निर्णय किए जाएंगे जिनका अंततः उन मुकदमेदारों पर प्रभाव होगा जिन्होंने अपनी शिकायत के प्रतितोष के लिए न्यायालय में समावेदन किया है ।

8. उस मुद्दे को जो लगभग विनिश्चित प्रतीत होता है, अविनिश्चित बताते हुए न्यायालय के समक्ष उद्धृत प्रत्येक निर्णय पर निश्चित रूप से विचार करने के लिए प्रयास किया गया है और निर्णय को विस्तृत बनाने का प्रयास किया गया है, यद्यपि उसे अधिक प्रबुद्ध और सही रीति में विनिश्चित किया जा सकता है क्योंकि इस मुद्दे को पहले ही इस

---

[1] ए. आई. आर. 2015 कलकत्ता 112.

न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है । यह न्यायालय इस बात के लिए पूर्णतया आशान्वित है कि बार के सदस्यों के बीच बेहतर समझ विद्यमान होगी और इसलिए तर्कयुक्त बहस होगी और वे मुद्दे जो मुकदमेदारी में अन्तर्वलित हैं, विचार में लिए जाएंगे और बहस उसी मुद्दे पर होगी ।

9. यद्यपि रिट याचिका में किए गए इस स्पष्ट कथन को कि वह संयुक्त रूट पर एक वर्तमान आपरेटर है, दृष्टिगत करते हुए रिट याचिका ग्रहण किए जाने के लिए याची को सुने जाने के अधिकार के प्रश्न पर विचार करना जोखिमपूर्ण मुद्दा नहीं है, तथापि, यह न्यायालय यह महसूस करता है कि जब एक बार प्रत्यर्थी सं. 6 की ओर से दलील दे दी गई है तो यह न्यायालय इन विनिश्चयों पर विचार न करने में अपने कर्तव्य में विफल नहीं होगा ।

10. याची द्वारा **डा. उमाकान्त सरन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह आक्षेप किया गया था कि वह बिहार राज्य आयुर्विज्ञान सेवा में सहायक सिविल सर्जन है और उसने यह कहते हुए रांची आयुर्विज्ञान महाविद्यालय में मामले के प्राइवेट प्रत्यर्थियों की प्राचार्यों के रूप में नियुक्ति को आक्षेपित किया था कि उनके पास किसी प्रकार के अध्यापन का अनुभव नहीं है । तथ्यतः यह पाया गया था कि याची और प्राइवेट प्रत्यर्थी उस सुसंगत समय पर एक ही सेवा में थे जब वे राजेन्द्र आयुर्विज्ञान महाविद्यालय में सर्जरी (शल्यक्रिया) में प्राचार्यों के रूप में प्रतिनियुक्ति पर थे और उस मामले के याची द्वारा यह दलील दी गई थी कि वह सेवा में ज्येष्ठ होने के नाते उसके पास आवश्यक अध्यापन अनुभव है जो कि अन्यों के पास नहीं है और इसलिए उनकी नियुक्तियां असंवैधानिक हैं । न्यायालय ने इस पृष्ठभूमि में मामले में अन्तर्वलित प्रश्नों पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय प्राधिकारियों को कुछ करने के लिए आबद्ध करने हेतु परमादेश जारी कर सकता है बशर्ते कि कानून प्राधिकारियों के ऊपर विधिक कर्तव्य अधिरोपित करता हो और व्यथित पक्षकार के पास अपनी मांग को प्रवृत्त कराने के लिए कानून के अधीन विधिक अधिकार हो ।

11. उच्चतम न्यायालय ने **डी. नागराज और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में समान मुद्दों पर यह अभिनिर्धारित किया कि जहां कोई व्यक्ति शिकायत किए गए विभेद द्वारा व्यथित नहीं हुआ है वहां उसकी ओर से रिट याचिका ग्राह्य नहीं है ।

12. यद्यपि **जे. महापात्र एंड कंपनी और एक अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में प्रत्यक्ष रूप से ऐसा अभिनिर्धारित नहीं किया गया है, तथापि, इस मामले में अभिव्यक्त मत से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रिट याचिका ग्रहण करने में एकमात्र अपवाद है कि वहां कोई मुकदमेदर अपने वैयक्तिक नुकसान को या विधिक अधिकार के भंग को उपदर्शित करने के लिए आबद्ध नहीं है जहां वह लोक हित मुकदमेदारी द्वारा न्यायालय में समावेदन करता है ।

13. इस प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता कि जब तक कोई व्यक्ति किसी अधिकार के विधिक भंग या अतिक्रमण के बारे में समाधान नहीं कर देता, उसकी ओर से लोक हित मुकदमेदारी के अतिरिक्त कोई कार्यवाही ग्रहण नहीं की जा सकती । सुने जाने के अधिकार के बारे में अभिवाक् पर विभिन्न विधिक निर्णयों में विचार किया गया है और अत्यावश्यकताओं को पूरा करने के लिए समय-समय पर सुधार किया गया है और इस प्रकार अधिनियमिती में भी परिवर्तन किया गया है ।

14. यदि कोई मुद्दा प्रत्यक्ष रूप से उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय से विनियमित होता है और यदि न्यायाधीश द्वारा प्रतिकूल मत लेना प्रतीत नहीं होता है या वह ऐसे निर्णय में अपनाए गए मत से असहमत नहीं होता है तो न्यायिक प्रशासन से यह अपेक्षित है कि उसे उस निर्णय का जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव है, सम्मान करना चाहिए । तथापि, उस दशा में जहां न्यायधीश को यह प्रतीत होता है कि ऐसे निर्णय में विभिन्न पहलुओं पर विचार नहीं किया गया है या वह हर पहलू पर विचार करने के पश्चात् ऐसे विनिश्चय से सहमत होने में असमर्थ है तब न्यायाधीश इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह मामले को मुख्य न्यायमूर्ति को वृहत्तर न्यायपीठ गठित करने के लिए निर्दिष्ट करे ।

15. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि उपर्युक्त सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय में अधिकथित विधि की प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता तथापि, इस पर वर्तमान याचिका में अन्तर्वलित तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए । याची ने स्वयं को संयुक्त रूट अर्थात् रूट सं. 81 और 81/1 में वर्तमान आपरेटर होने का दावा किया है । निर्देश का मुददा जैसाकि **प्रभात पान और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में विशेष न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय के पैरा 1 से स्पष्ट होता है, यह है कि क्या वर्तमान आपरेटर की ओर से जिसे कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण में परस्पर संचालन के लिए परमिट मंजूर किया गया है,

फाइल की गई रिट याचिका ग्राह्य है । इसका उत्तर उक्त निर्णय के पैरा 41 में की गई मताभिव्यक्ति से मिलता है, जो इस प्रकार है :–

"41. कोई निर्णय इस विधिक प्रास्थिति के लिए एक नजीर है क्योंकि इसका स्पष्ट रूप से विनिश्चय किया गया है न कि किसी अन्य कारण से जो विचार किया जाना या विनिश्चित किया जाना समझा जाता है । **मिथिलेश गर्ग** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत इस न्यायालय पर आबद्धकर है और उसे ऐसा समझा जाएगा कि संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा विधि घोषित की गई है ; तथापि, ऐसे निर्णय में अभिव्यक्त मत ही आबद्धकर है । निर्णय में अभिव्यक्त मत संपूर्ण निर्णय के परिशीलन के आधार पर दृष्टिगोचर किया जाना चाहिए और उस निष्कर्ष के आधार पर निकाला जाना चाहिए जो स्वतः निर्णय में उल्लिखित है । इस बारे में कि निर्णय में क्या उल्लिखित है, मामले के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए न कि पृथक् रूप में । किसी निर्णय को किसी कानून के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए और उसमें अभिव्यक्त मत इस तर्क पर आधारित है कि विधि को किस प्रकार निष्कर्ष निकालने के लिए तथ्यों पर लागू किया जाएगा । उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत उसके निर्णयों में अन्तर्विष्ट है न कि अन्य किसी विधि में जो कि आबद्धकर नहीं है ।

42. अतः **मिथिलेश गर्ग** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत केवल उस स्थिति तक निर्बंधित है जहां तक यह उपदर्शित होता है कि किसी वर्तमान आपरेटर ने वर्तमान आपरेटर के कार्य या अन्याय के आधार पर वाणिज्यिक हितों को आधार बनाते हुए संचालन के विरुद्ध प्रविष्टि को आक्षेपित किया है । निर्णय को इस विवक्षा के लिए नहीं पढ़ा जा सकता कि किसी वर्तमान आपरेटर को परिवहन प्राधिकारियों के जिन्होंने उसी क्षेत्र में संचालन के लिए नई प्रविष्टियों को अनुज्ञात किया है, किसी अवैध या अनियमित कार्य की शिकायत करने के लिए कोई अधिकार प्राप्त नहीं है । इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि यह किसी वर्तमान आपरेटर का वाणिज्यिक हित है जो उसे किसी विरोधी को परमिट की मंजूरी को आक्षेपित करने के लिए मजबूर कर सकता है ; तथापि, जहां आक्षेप अनियमित या अवैध कार्यों पर और परिवहन प्राधिकारियों के आचरण पर आधारित है वहां

आक्षेप को मात्र कारबार स्पर्धा के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता ।

43. मोटर यान अधिनियम, 1988 और इसके अधीन विरचित नियम या नीति मार्गदर्शक परिवहन प्राधिकारियों को परमिट मंजूरी के मामले में किसी विशिष्ट रीति में कार्य करने या यानों को वाणिज्यिक रूप से चलाने के लिए अनुज्ञात करने के लिए निदेशित करते हैं । इन कानूनी उपबंधों में से अनेक उपबंधों का उल्लेख निर्देश के प्रथम आदेश में किया गया है और वर्तमान कार्यवाहियों के अनुक्रम में रिट याचियों द्वारा निर्दिष्ट किए गए हैं । चूंकि कानूनी प्राधिकारी विधि के अनुसार और उस रीति में कार्य करने के लिए आबद्ध हैं जिसमें विधि कार्य करने के लिए उनसे अपेक्षा करती है वहां कानूनी प्राधिकारियों की कार्यवाहियां न्यायसंगत हैं । यदि इस बारे में कोई शिकायत है कि परमिट की मंजूरी या उसके समान कार्यवाही कानून के अधीन विरचित नियमों या नीति मार्गदर्शकों या कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण में की गई है या प्राधिकारी ने इनके प्रयोग में हेरफेर किया है तो की गई शिकायत को या तद्द्वारा या अन्याय की गंभीरता को जिसके अधीन अन्याय हुआ है, न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन रखा जा सकता है । यदि यह शिकायत की गई है कि प्राधिकार का अनियमित या अवैध प्रयोग हुआ है जिसके परिणामस्वरूप परिवादी प्रभावित हुआ है या प्रभावित होने की संभावना है तो शिकायतकर्ता की स्थिति अनियमित या अवैध कार्यपालक उदारता के हिताधिकारी स्पर्धात्मक कारबार के रूप में उस शिकायतकर्ता के रास्ते में बाधक नहीं होगा जिसने न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए शिकायत प्राप्त की है । तथापि, जहां कोई अधिकरण ऐसी शिकायत को प्राप्त करने के लिए हकदार है वहां उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में शिकायत ग्रहण करने के लिए उत्साहित नहीं होना चाहिए जब तक कि शिकायत किया गया कार्य स्पष्ट रूप से या स्पष्टतः अधिकारिता रहित या नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण अतिक्रमण में न हो ; अथवा ऐसे अपवाद लागू न हों जिन्हें न्यायालय समाधान के लिए वैकल्पिक उपचार के रूप में न समझे ।

44. तद्नुसार निर्देश के दोंनों आदेशों में उठाए गए प्राथमिक प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया जाता है : इस विचारणा के अध्यधीन

कि पर्याप्त वैकल्पिक उपचार मौजूद है, वर्तमान आपरेटरों के जिन्हें विभिन्न रूटों पर मंजिली गाड़ी सेवाएं प्रदान की गई हैं और जिन्होंने नए आपरेटरों (चाहे वह वही रूट हों जिन पर वे संचालन कर रहे हैं या उन रूटों के किसी भाग का उपयोग कर रहे हैं) के हक में जारी नए परमिटों की मंजूरी को आक्षेपित किया है, की ओर से फाइल रिट याचिका परिवहन प्राधिकारियों द्वारा ग्रहण किए जाने योग्य होगी यदि आक्षेप अवैधता या मनमानेपन या शक्ति के गलत प्रयोग, संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के सिवाय, के आधार पर की गई है, इस बात के होते हुए भी कि वर्तमान आपरेटर के वाणिज्यिक हित द्वारा कार्यवाही प्रभावित हो सकती है ; बशर्ते कि आक्षेप का सार वर्तमान आपरेटर जो शिकायत किए गए कार्यों द्वारा प्रभावित हुआ है केवल वाणिज्यिक हितों पर न हो ।"

16. वृहत्तर न्यायपीठ के विनिश्चय में अधिकथित विधि की स्थिति को दृष्टिगत करते हुए मेरे मन में इस बारे में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची की ओर से फाइल की गई रिट याचिका ग्रहण किए जाने योग्य है इसलिए सुने जाने के अधिकार पर आधारित प्राथमिक आक्षेप विफल होता है ।

17. वर्तमान रिट याचिका के गुण-दोष पर विचार करते हुए, जैसाकि ऊपर उपदर्शित किया गया है, याची ने प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों की उक्त नियमों के नियम 141 के अधीन जारी प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता को विस्तारित करने की कार्रवाई को यह कहते हुए आक्षेपित किया है कि उक्त कार्रवाई उक्त उपबंध के प्रतिकूल है । यह न्यायालय आगे कार्यवाही करने से पूर्व उक्त नियमों के नियम 141 के अधीन उल्लिखित उपबंधों को उद्धृत करना आवश्यक समझता है, जो इस प्रकार है :–

"141. प्रत्येक परमिट पर यान (यानों) के रजिस्ट्रीकरण चिह्न (चिह्नों) का उल्लेख होना चाहिए जो यान मंजूर किए गए परमिट के आधार पर चलाए जाते हैं और परिवहन प्राधिकारी द्वारा विहित अवधि के संबंध में प्रस्ताव-पत्र में मंजूरी होनी चाहिए जो कि सामान्यतया उस तारीख से एक मास से अधिक नहीं होना चाहिए जिस तारीख को प्रस्ताव-पत्र जारी किया गया है और परमिट मंजूर किए गए व्यक्ति द्वारा यह उपदर्शित करते हुए यान (यानों) के संबंध में दस्तावेज पेश करने चाहिए कि यान उसके कब्जे में उसके मालिक के रूप में है और संबंधित यान (यानों) के पते का परिवर्तन उसके

राज्य के भीतर कर दिया जाना चाहिए यदि पूर्व में यान इस राज्य के बाहर रजिस्ट्रीकृत है और यान किसी किस्म के परमिट (परमिटों) के अन्तर्गत नहीं आता है/आते हैं :

परंतु परिवहन प्राधिकारी के पास परमिट को मंजूर करने के लिए ऐसे कारण होने चाहिए जो अभिलिखित किए गए हों और प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता का विस्तार इसके जारी किए जाने की तारीख से छह मास के लिए आपवादिक मामलों में ही होना चाहिए ।"

18. उक्त नियम यह अधिकथित करता है कि परिवहन प्राधिकारियों को प्रस्ताव-पत्र में परमिट की मंजूरी के समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इसमें यानों के रजिस्ट्रीकरण चिह्न का उल्लेख है और प्रस्ताव-पत्र के रूप में ऐसा परमिट सामान्यतया इसके जारी करने की तारीख से एक मास से अधिक की अवधि का नहीं होना चाहिए । तथापि, उक्त नियमों का परंतुक परिवहन प्राधिकारियों को आपवादिक मामलों में परमिट जारी करने की तारीख से छह मास तक के लिए प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता को विस्तारित करने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है बशर्ते कि इसके लिए लिखित में कारण अभिलिखित किए जाएं ।

19. उक्त नियम के परंतुक के साथ नियम का निर्वचन करने पर इस बारे में कोई अस्पष्टता नहीं रह जाती कि प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता के लिए ऊपरी सीमा या अधिकतम सीमा छह मास के लिए नियत की गई है । संबंधित उपबंध यह उल्लेख करता है कि प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता एक मास से परे नहीं होनी चाहिए और इसका परंतुक प्राधिकारियों को ऊपरी सीमा के लिए समय विस्तारित करने के लिए सशक्त करता है तथापि, केवल आपवादिक मामलों में और जिसमें लिखित में कारण अभिलिखित किए जाएं और यह नियम प्राधिकारियों द्वारा किसी कारण या परिस्थितियों के बारे में उल्लेख किए बिना एक मास के परे प्रस्ताव-पत्र की विधिमान्यता अवधि विस्तारित करने में सामान्य रीति में शक्ति का प्रयोग करने से विवर्जित करता है और ऐसी परिस्थितियां आपवादिक और असाधारण प्रकृति की होनी चाहिए और जहां कानूनी नियम किसी विशिष्ट रीति में शक्ति का प्रयोग करने के बारे में उपबंध करते हों वहां प्राधिकारी इसका कड़ाई से पालन न करने में अपनी जिम्मेदारियों से नहीं बच सकते । भले ही इस न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि प्राधिकारियों द्वारा विस्तार मंजूर किया गया था (यद्यपि किसी आपवादिक और असाधारण परिस्थिति का और

कारण का उल्लेख नहीं किया गया है) तथापि, प्राधिकारी इस नियम के परंतुक में उपबंधित ऊपरी सीमा के परे नहीं जा सकते ।

20. विधि यह है कि कोई व्यक्ति ऐसी कोई बात कर सकता है जब तक कि विधि द्वारा ऐसा करना प्रतिषिद्ध न हो ; इसके प्रतिकूल कानूनी प्राधिकारी ऐसी चीज़ नहीं कर सकते जब तक कि विधि के अधीन उपबंधित न किया गया हो । कानूनी प्राधिकारी दस्तावेजों के आधार पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हैं जो कानून के अन्तर्गत हैं और इसलिए वे अपनी सीमा के बाहर नहीं जा सकते । कानूनी प्राधिकारियों को विधि की सीमा के भीतर ही कार्रवाई करनी चाहिए क्योंकि शक्ति के बाह्य की गई कोई कार्रवाई न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को आमंत्रित करती है और वहां किसी व्यक्ति को कोई अधिकार अर्जित नहीं होता जहां प्राधिकारियों द्वारा अवैध और गलत आदेश पारित किए गए हों ।

21. ऊपर अभिलिखित निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए प्राधिकारी प्रस्ताव-पत्र की अवधि की विधिमान्यता को इसके जारी करने की तारीख से एक मास से परे विस्तारित नहीं कर सकते जब तक कि आपवादिक और असाधारण परिस्थितियां मौजूद न हों, बशर्ते कि लिखित में कारणों का उल्लेख किया जाए और यह अवधि भी छह मास से अधिक नहीं हो सकती । जहां नियम छह मास के परे समय विस्तारित करने के लिए उपबंध नहीं करते जो कि अधिकतम सीमा है वहां प्राधिकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते और न ही इसके परे कार्रवाई कर सकते हैं क्योंकि वे उक्त उपबंध की सीमाओं के भीतर कार्य करने के लिए आबद्ध हैं । जहां कानूनी प्राधिकारियों की कार्रवाई सुस्पष्टतया कानूनी नियमों के अधीन दी गई शक्ति के परे हैं वहां ऐसी कार्रवाई स्पष्टतया अवैध है और इसलिए उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसे विनिश्चय को अभिखंडित करने और अपास्त करने के लिए कोई बाधा नहीं है ।

22. स्वीकृततः प्रत्यर्थियों को तारीख 14 दिसंबर, 2016 को प्रस्ताव-पत्र जारी किया गया था और इसकी वैधता अवधि वर्ष 2018 में भी समय-समय पर विस्तारित की गई थी । प्राधिकारियों का उक्त विनिश्चय स्पष्ट रूप से नियम 141 के अधीन उल्लिखित उपबंधों के प्रतिकूल है और इसलिए इसे विधिमान्य नहीं माना जा सकता । प्रस्ताव-पत्र जारी करने की तारीख से छह मास के परे विधिमान्यता अवधि को विस्तारित करने का विनिश्चय प्रथम दृष्टि में ही अवैध और अनियमित है और उक्त नियम के उपबंधों के प्रतिकूल है ।

23. प्रत्यर्थियों को जारी प्रस्ताव-पत्र और समय-समय पर उसका छह मास की अवधि के लिए विस्तार विधिमान्य होना घोषित किया जाता है और इस अवधि के परे कोई विस्तार अवैध और शून्य है तथा एतद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है ।

24. अतः रिट याचिका निपटाई जाती है ।

25. तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका तद्नुसार निपटाई गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 175 **गुवाहाटी**

मृदुल शर्मा

बनाम

श्रीमती गीतूमोनी भट्टाचार्जी

तारीख़ 22 मई, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति अजीत सिंह और न्यायमूर्ति सुमन श्याम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क) और (i-ख) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – पत्नी के विरुद्ध परित्याग और क्रूरता बरतने के अभिकथन – साक्ष्य से यह साबित होना कि पति अपनी पत्नी के साथ अपनी ससुराल में रहने लगा था और बाद में वह अपनी पत्नी और बच्ची को छोड़कर चला आया – पत्नी द्वारा यह साक्ष्य दिया जाना कि उसका पति सदैव शराब पिए स्थिति में रहता था – विचारण न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री से इनकार – चूंकि पति परित्यजन और क्रूरता के तथ्य को साबित करने में असमर्थ रहा है और इसके विपरीत पति द्वारा क्रूरता बरती जानी साबित हुई है – अतः विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से ठीक ही इनकार किया गया है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी का विवाह तारीख 2 अक्तूबर, 2000 को हुआ था और प्रथमतः उन्होंने एक किराए के मकान में अपना वैवाहिक जीवन आरंभ

किया तथापि, बाद में वे अपीलार्थी के पिता के मकान में चले गए । उनके विवाह-बंधन से एक पुत्री अर्थात् अनुजा शर्मा का तारीख 10 जनवरी, 2002 को जन्म हुआ था । अपीलार्थी के अनुसार आरंभतः उनका वैवाहिक जीवन सुखी था तथापि, प्रत्यर्थी ने अप्रैल, 2001 में उसे छोड़ दिया । वह नौकरीविहीन व्यक्ति था और वह अपनी तीन चाचियों सहित कुटुम्ब के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने पिता के मकान में रह रहा था, जबकि प्रत्यर्थी एक विद्यालय में कार्य करती थी । जब प्रत्यर्थी ने उसका किसी कारण के बिना परित्याग करके अपने मायके में रहना आरंभ किया तब अपीलार्थी अपनी पुत्री के प्रेम और स्नेह के कारण प्रत्यर्थी के माता-पिता के मकान में रहने चला गया और सतत् रूप से अक्तूबर, 2005 तक वहीं रहता रहा । प्रत्यर्थी ने अक्तूबर, 2005 में एक दिन बिना किसी कारण और युक्ति के उसके साथ दुर्व्यवहार किया और इसलिए उसने प्रत्यर्थी के साथ रहना छोड़ दिया । प्रत्यर्थी ने अपनी माता के उकसाने पर सिन्दूर लगाना छोड़ दिया । उसके सभी प्रयासों के बावजूद प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ रहने में अनिच्छा व्यक्त की और इसलिए जब उसे वापस लाने के सभी प्रयास विफल हो गए तब उसने विवाह-विच्छेद की डिक्री का अनुरोध करते हुए अर्जी फाइल की । पति-मृदुल शर्मा द्वारा यह अपील 2013 के एफ. सी. (सिविल) मामला सं. 118 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय सं. II, कामरूप (मेट्रो) द्वारा तारीख 16 जून, 2017 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-क) और (i-ख) के अधीन प्रत्यर्थी गीतूमोनी भट्टाचार्जी के विरुद्ध फाइल की गई अर्जी को खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी ने लिखित कथन में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए वाद का विरोध किया कि अपीलार्थी कोई काम नहीं करता है और प्रत्यर्थी और अपीलार्थी पूर्ण रूप से अपने श्वसुर की जो बैंक में एक कर्मचारी है, आय पर निर्भर करते हैं । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी शराब पीता है और उसके साथ अनुचित रीति में व्यवहार करता है । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी के कुटुंब के सदस्य भी अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं और उन्होंने कभी-भी अपीलार्थी को शराब पीने से नहीं रोका और एक अवसर पर अपीलार्थी की एक अविवाहित बहन ने उसके ऊपर गर्म चाय का कप उड़ेल दिया । अतः वह अपनी पुत्री के साथ अपीलार्थी का घर

छोड़कर चली गई और अपने पिता के साथ रहने लगी । अपीलार्थी उसके माता-पिता के मकान पर आया तथापि, वह उसे अकेली छोड़ कर चला गया । वह शराब पिए हुए था और उसने उसके (प्रत्यर्थी के) भाई को भी शराब पीने के लिए उकसाया था और इसलिए उसने अपीलार्थी को अपने माता-पिता के मकान पर आने से मना कर दिया था और उसके साथ सभी संबंध खत्म कर दिए थे । उसने स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया है कि उसने सिन्दूर लगाना छोड़ दिया था और यह अभिकथित किया है कि अपीलार्थी द्वारा उसके विरुद्ध गलत और बनावटी अभिकथन किया गया है । उसने यह स्वीकार किया कि अपीलार्थी के पिता और चाचा एक बार उसके पिता के मकान पर बातचीत करने के लिए आए थे और प्रत्यर्थी से विवाह-विच्छेद करने के लिए कहा था । उसके अनुसार अपीलार्थी ने उससे कभी भी संपर्क नहीं किया और अपनी अवयस्क पुत्री को कभी भी आशीर्वाद नहीं दिया, यहां तक कि वह पुत्री के जन्मदिन और अन्य त्यौहारों पर भी मिलने नहीं आया । प्रत्यर्थी ने अपनी ससुराल में रहने का प्रयास किया था तथापि, उसके साथ इस सीमा तक दुर्व्यवहार और प्रताड़ित किया गया था कि वह अपनी ससुराल छोड़ने के लिए मजबूर हो गई थी और इस प्रकार उसने जानबूझकर परित्याग नहीं किया था और इसलिए उसने वाद की खारिजी के लिए अनुरोध किया । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के पक्षकथन पर विश्वास नहीं किया और विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज कर दी । विचारण न्यायालय के अनुसार अपीलार्थी प्रत्यर्थी द्वारा अपने साथ मानसिक क्रूरता के आधार को न तो साबित कर सका है और न ही अपीलार्थी अपने परित्याग को साबित कर सका है । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अपील खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी ने दो आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा की है – प्रथमतः, प्रत्यर्थी ने उसे किसी कारण के बिना छोड़ दिया है और द्वितीयतः प्रत्यर्थी ने उसके साथ क्रूरता बरती है । स्वतः अपीलार्थी के अभिवचनों से पूर्णतया यह स्पष्ट होता है कि जब प्रत्यर्थी अप्रैल, 2001 में अपनी ससुराल आई तो अपीलार्थी उसके साथ था और प्रत्यर्थी अक्तूबर, 2005 तक अपीलार्थी के पिता के मकान में रही । इस तथ्य को अपीलार्थी ने भी अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है । अपीलार्थी के पिता नृपन शर्मा (पी. डब्ल्यू. 2) ने अपीलार्थी के परिसाक्ष्य का समर्थन किया है और उसकी चाची श्रीमती हिमानी देवी (पी. डब्ल्यू. 4) ने भी अपीलार्थी के कथन का समर्थन

किया है । अतः यह स्पष्ट है कि यद्यपि प्रत्यर्थी अप्रैल, 2001 में अपनी ससुराल से चली आई थी और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी अक्तूबर, 2005 तक प्रत्यर्थी के पिता के मकान में रहे तथापि, बाद में अपीलार्थी प्रत्यर्थी को छोड़कर चला गया । अपीलार्थी यह उपदर्शित करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी उसके साथ दुर्व्यवहार या क्रूरता का व्यवहार करती थी । अतः अपीलार्थी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रत्यर्थी ने उसका परित्याग कर दिया था और इसके बजाय इसके प्रतिकूल ही साबित हुआ है । यद्यपि अपीलार्थी ने यह अभिकथित किया है कि प्रत्यर्थी सिन्दूर नहीं लगाती थी और इस प्रकार उसने अपीलार्थी के साथ मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया तथापि, अपीलार्थी यह बात साबित नहीं कर सका है । प्रत्यर्थी ने यह साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी अक्सर शराब पिए रहता था और पिता विमलेन्दू भट्टाचार्जी (डी. डब्ल्यू. 2) ने भी प्रत्यर्थी के साक्ष्य का समर्थन किया है । अतः यह साबित हो गया है कि प्रत्यर्थी ने क्रूरता का व्यवहार नहीं किया अपितु अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया । न्यायालय के सुविचारित मतानुसार उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए कुटुम्ब न्यायालय ने क्रूरता और परित्यजन के आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से ठीक ही इनकार किया है । न्यायालय को आक्षेपित निर्णय और डिक्री में ऐसी कोई अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है जिसके आधार पर हस्तक्षेप किया जा सके । (पैरा 3, 4 और 5)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की वैवाहिक अपील सं. 51.

2013 के एफ. सी. (सिविल) मामला सं. 118 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय सं. II, कामरूप (मेट्रो) द्वारा तारीख 16 जून, 2017 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एन. डेका और सुश्री आर. बरुआ

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री एस. चक्रवर्ती

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अजीत सिंह ने दिया ।

मु. न्या. सिंह – पति-मृदुल शर्मा द्वारा यह अपील 2013 के एफ. सी. (सिविल) मामला सं. 118 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय सं. II, कामरूप (मेट्रो) द्वारा तारीख 16 जून, 2017 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा

13(1)(i-क) और (i-ख) के अधीन प्रत्यर्थी गीतूमोनी भट्टाचार्जी के विरुद्ध फाइल की गई अर्जी को खारिज किया गया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी का विवाह तारीख 2 अक्तूबर, 2000 को हुआ था और प्रथमतः उन्होंने एक किराए के मकान में अपना वैवाहिक जीवन आरंभ किया तथापि, बाद में वे अपीलार्थी के पिता के मकान में चले गए । उनके विवाह-बंधन से एक पुत्री अर्थात् अनुजा शर्मा का तारीख 10 जनवरी, 2002 को जन्म हुआ था । अपीलार्थी के अनुसार आरंभतः उनका वैवाहिक जीवन सुखी था तथापि, प्रत्यर्थी ने अप्रैल, 2001 में उसे छोड़ दिया । वह नौकरीविहीन व्यक्ति था और वह अपनी तीन चाचियों सहित कुटुम्ब के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने पिता के मकान में रह रहा था, जबकि प्रत्यर्थी एक विद्यालय में कार्य करती थी । जब प्रत्यर्थी ने उसका किसी कारण के बिना परित्याग करके अपने मायके में रहना आरंभ किया तब अपीलार्थी अपनी पुत्री के प्रेम और स्नेह के कारण प्रत्यर्थी के माता-पिता के मकान में रहने चला गया और सतत् रूप से अक्तूबर, 2005 तक वहीं रहता रहा । प्रत्यर्थी ने अक्तूबर, 2005 में एक दिन बिना किसी कारण और युक्ति के उसके साथ दुर्व्यवहार किया और इसलिए उसने प्रत्यर्थी के साथ रहना छोड़ दिया । प्रत्यर्थी ने अपनी माता के उकसाने पर सिन्दूर लगाना छोड़ दिया । उसके सभी प्रयासों के बावजूद प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ रहने में अनिच्छा व्यक्त की और इसलिए जब उसे वापस लाने के सभी प्रयास विफल हो गए तब उसने विवाह-विच्छेद की डिक्री का अनुरोध करते हुए अर्जी फाइल की ।

3. प्रत्यर्थी ने लिखित कथन में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए वाद का विरोध किया कि अपीलार्थी कोई काम नहीं करता है और प्रत्यर्थी और अपीलार्थी पूर्ण रूप से अपने श्वसुर की जो बैंक में एक कर्मचारी है, आय पर निर्भर करते हैं । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी शराब पीता है और उसके साथ अनुचित रीति में व्यवहार करता है । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी के कुटुंब के सदस्य भी अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं और उन्होंने कभी-भी अपीलार्थी को शराब पीने से नहीं रोका और एक अवसर पर अपीलार्थी की एक अविवाहित बहन ने उसके ऊपर गर्म चाय का कप उड़ेल दिया । अतः वह अपनी पुत्री के साथ अपीलार्थी का घर छोड़कर चली गई और अपने पिता के साथ रहने लगी । अपीलार्थी उसके माता-पिता के मकान पर आया तथापि, वह उसे अकेली छोड़ कर चला

गया । वह शराब पिए हुए था और उसने उसके (प्रत्यर्थी के) भाई को भी शराब पीने के लिए उकसाया था और इसलिए उसने अपीलार्थी को अपने माता-पिता के मकान पर आने से मना कर दिया था और उसके साथ सभी संबंध खत्म कर दिए थे । उसने स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया है कि उसने सिन्दूर लगाना छोड़ दिया था और यह अभिकथित किया है कि अपीलार्थी द्वारा उसके विरुद्ध गलत और बनावटी अभिकथन किया गया है । उसने यह स्वीकार किया कि अपीलार्थी के पिता और चाचा एक बार उसके पिता के मकान पर बातचीत करने के लिए आए थे और प्रत्यर्थी से विवाह-विच्छेद करने के लिए कहा था । उसके अनुसार अपीलार्थी ने उससे कभी भी संपर्क नहीं किया और अपनी अवयस्क पुत्री को कभी भी आशीर्वाद नहीं दिया, यहां तक कि वह पुत्री के जन्मदिन और अन्य त्यौहारों पर भी मिलने नहीं आया । प्रत्यर्थी ने अपनी ससुराल में रहने का प्रयास किया था तथापि, उसके साथ इस सीमा तक दुर्व्यवहार और प्रताड़ित किया गया था कि वह अपनी ससुराल छोड़ने के लिए मजबूर हो गई थी और इस प्रकार उसने जानबूझकर परित्याग नहीं किया था और इसलिए उसने वाद की खारिजी के लिए अनुरोध किया ।

4. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के पक्षकथन पर विश्वास नहीं किया और विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज कर दी । विचारण न्यायालय के अनुसार अपीलार्थी प्रत्यर्थी द्वारा अपने साथ मानसिक क्रूरता के आधार को न तो साबित कर सका है और न ही अपीलार्थी अपने परित्याग को साबित कर सका है ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपील खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी ने दो आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा की है – प्रथमतः, प्रत्यर्थी ने उसे किसी कारण के बिना छोड़ दिया है और द्वितीयतः प्रत्यर्थी ने उसके साथ क्रूरता बरती है । स्वतः अपीलार्थी के अभिवचनों से पूर्णतया यह स्पष्ट होता है कि जब प्रत्यर्थी अप्रैल, 2001 में अपनी ससुराल आई तो अपीलार्थी उसके साथ था और प्रत्यर्थी अक्तूबर, 2005 तक अपीलार्थी के पिता के मकान में रही । इस तथ्य को अपीलार्थी ने भी अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है । अपीलार्थी के पिता नृपन शर्मा (पी. डब्ल्यू. 2) ने अपीलार्थी के परिसाक्ष्य का समर्थन किया है और उसकी चाची श्रीमती हिमानी देवी (पी. डब्ल्यू. 4) ने भी

अपीलार्थी के कथन का समर्थन किया है । अतः यह स्पष्ट है कि यद्यपि प्रत्यर्थी अप्रैल, 2001 में अपनी ससुराल से चली आई थी और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी अक्तूबर, 2005 तक प्रत्यर्थी के पिता के मकान में रहे तथापि, बाद में अपीलार्थी प्रत्यर्थी को छोड़कर चला गया । अपीलार्थी यह उपदर्शित करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी उसके साथ दुर्व्यवहार या क्रूरता का व्यवहार करती थी । अतः अपीलार्थी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रत्यर्थी ने उसका परित्याग कर दिया था और इसके बजाय इसके प्रतिकूल ही साबित हुआ है । यद्यपि अपीलार्थी ने यह अभिकथित किया है कि प्रत्यर्थी सिन्दूर नहीं लगाती थी और इस प्रकार उसने अपीलार्थी के साथ मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया तथापि, अपीलार्थी यह बात साबित नहीं कर सका है । प्रत्यर्थी ने यह साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी अक्सर शराब पिए रहता था और पिता विमलेन्दू भट्टाचार्जी (डी. डब्ल्यू. 2) ने भी प्रत्यर्थी के साक्ष्य का समर्थन किया है । अतः यह साबित हो गया है कि प्रत्यर्थी ने क्रूरता का व्यवहार नहीं किया अपितु अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया । हमारे सुविचारित मतानुसार उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए कुटुम्ब न्यायालय ने क्रूरता और परित्यजन के आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से ठीक ही इनकार किया है । हमें आक्षेपित निर्णय और डिक्री में ऐसी कोई अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है जिसके आधार पर हस्तक्षेप किया जा सके ।

6. तद्नुसार अपील खारिज की जाती है

अपील खारिज की गई ।

मह.

मनतव्य सत्यम अग्रवाल

बनाम

सत्यम राजीव रत्न अग्रवाल और अन्य

तारीख 29 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति गौतम भादुड़ी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 22, नियम 3 और 10 और आदेश 43 का नियम 1 तथा धारा 96 – प्रकीर्ण अपील – वादी की मृत्यु के पश्चात् विल के आधार पर पक्षकार बनाने के लिए आवेदन – न्यायालय द्वारा विल को साबित न माना जाना – आवेदन की ग्राह्यता – ऐसे किसी मामले में आदेश 22 का नियम 10 लागू नहीं होता – अतः आवेदन की खारिजी के विरुद्ध प्रकीर्ण अपील ग्राह्य नहीं है ।

वर्तमान अपील चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा सिविल वाद सं. 1ए/11 में तारीख 14 अक्तूबर, 2016 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के साथ पठित नियम 3 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया गया है । इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि कुमारी अनीता अग्रवाल ने सात प्रतिवादियों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न अनुतोषों का दावा करते हुए वर्ष 2011 में एक वाद फाइल किया था । वाद के लंबन के दौरान एकमात्र वादी कुमारी अनीता अग्रवाल की जिसकी आयु लगभग 72 वर्ष बताई गई है, मृत्यु हो गई । प्रतिवादी द्वारा उसकी मृत्यु के पूर्व लिखित कथन फाइल किया गया था । उसकी मृत्यु के पश्चात् हमारे समक्ष के अपीलार्थी द्वारा यह दावा करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 और 10 के अधीन आवेदन फाइल किया गया था कि वादी कुमारी अनीता अग्रवाल ने अपनी संपूर्ण संपत्ति मनतव्य अग्रवाल जो कि अवयस्क है, के हक में तारीख 16 दिसंबर, 2014 की एक विल द्वारा वसीयत कर दी थी । इसके पश्चात् इस आवेदन का उत्तर फाइल किया गया था और निचले न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 और 10 के अधीन आवेदन का यह अभिनिर्धारित करते हुए

न्यायनिर्णयन कर दिया कि विल को सम्यक् रूप से साबित नहीं किया गया है और परिणामत: अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया था । अत: वर्तमान अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 5 न्यायालय को विधिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न का अवधारण करने के लिए अनुज्ञात करता है । चूंकि न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी ने विल के आधार पर विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया है इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 5 के अधीन जांच के दौरान विल को साबित करने के लिए साक्षियों की परीक्षा की गई है । विद्वान् निचले न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि विल किसी भी प्रकार से निष्पादित साबित नहीं हुई थी इसलिए इसके परिणामस्वरूप सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के अधीन आवेदन खारिज किए जाने योग्य है । न्यायालय ने तारीख 14 अक्तूबर, 2016 को ही उक्त आदेश पारित करने के पश्चात् यह अभिलिखित किया कि वादी के विरुद्ध वाद का उपशमन किया जाता है । चूंकि प्रतिदावा अस्तित्व युक्त था इसलिए प्रतिवादी के साक्ष्य को अभिलिखित करने की कार्यवाही की गई । यह न्यायालय इस प्रक्रम पर इस विवाद्यक पर विचार करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि प्राथमिक रूप से प्रश्न सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1 के अधीन अपील की ग्राह्यता से संबंधित है । तारीख 14 अक्तूबर, 2016 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि उस विल को जिसके आधार पर अपीलार्थी ने विधिक वारिस होने का दावा किया था, नकार दिया गया है । इसके पश्चात् न्यायालय ने प्राथमिक रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि मामले में कोई विधिक वारिस मौजूद नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 4 भी ऐसी स्थिति के बारे में उपबंध करता है । यह तात्पर्यित है कि जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकार की मृत्यु के पश्चात् उसका कोई विधिक प्रतिनिधि मौजूद नहीं है वहां न्यायालय वाद के किसी पक्षकार के आवेदन पर ऐसे व्यक्ति की अनुपस्थिति में कार्यवाही कर सकता है जो मृतक व्यक्ति की संपदा का प्रतिनिधित्व कर रहा है अथवा आदेश द्वारा सामान्य-प्रशासक की नियुक्ति कर सकता है अथवा न्यायालय के अधिकारी की या ऐसे किसी अन्य व्यक्ति की नियुक्ति कर सकता है जैसा कि न्यायालय

प्रतिनिधित्व करने के लिए उचित समझे । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि किसी हित के समनुदेशन, सृजन या न्यागमन की दशा में वाद न्यायालय की इजाज़त से चालू रखा जा सकेगा । न्यायालय ने अपने न्यायिक आदेश द्वारा यह उल्लेख किया है कि अपीलार्थी के हक में किसी हित का न्यागमन या सृजन नहीं माना जा सकता क्योंकि उस विल को जिसके आधार पर अधिकार का दावा किया गया था, नकार दिया गया है । वहां न्यायनिर्णयन किए जाने के लिए भिन्न स्थिति होती जहां मृतक की संपदा के प्रतिनिधित्व के लिए विचार के लिए कोई आवेदन फाइल किया जाता । न्यायालय ऐसे किसी मामले में गुण-दोष और प्रक्रिया के अनुसार आवेदन पर विचार करता । तथापि, वर्तमान मामले में अभी तक ऐसा कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया है । आवेदन और आदेश से जिसके द्वारा अपीलार्थी के अधिकार से इनकार किया गया था, प्राथमिक रूप से यह प्रतीत होता है कि संपूर्ण दावा उस विल के आधार पर किया गया था जिसके द्वारा विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया गया है और प्रथमदृष्ट्या यह उपदर्शित होता है कि आदेश में नियम 10 का कोई उल्लेख नहीं है । चूंकि उपर्युक्त प्रतिपादनाओं का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आक्षेपाधीन आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के अधीन पारित किया गया है इसलिए इस न्यायालय द्वारा प्रकीर्ण अपील ग्राह्य नहीं होगी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस प्रक्रम पर आदेश की प्रमाणित प्रति दिलाने का अनुरोध किया है जिससे कि विधि के अधीन अपीलार्थी को उपलब्ध समुचित उपचार प्राप्त हो सके । (पैरा 7, 8, 9, 10, 11, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 773 : **मंगलू राम देवांगन** बनाम **सुरेन्द्र सिंह और अन्य ;**	12
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2866 = (2008) 8 एस. सी. सी. 521 : **जलादी सुगुना (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **सत्य साईं सेन्ट्रल ट्रस्ट और अन्य ।**	4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की एम. ए. सं. 115.

चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा सिविल वाद सं. 1ए/11 में तारीख 14 अक्तूबर, 2016 को पारित आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बी. पी. शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मनीश उपाध्याय, संजय कुमार अग्रवाल, मनोज परांजपे और बी. आर. मिन्ज, उप सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति गौतम भादुड़ी – सुना गया ।

2. वर्तमान अपील चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा सिविल वाद सं. 1ए/11 में तारीख 14 अक्तूबर, 2016 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के साथ पठित नियम 3 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया गया है ।

3. इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि कुमारी अनीता अग्रवाल ने सात प्रतिवादियों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न अनुतोषों का दावा करते हुए वर्ष 2011 में एक वाद फाइल किया था । वाद के लंबन के दौरान एकमात्र वादी कुमारी अनीता अग्रवाल की जिसकी आयु लगभग 72 वर्ष बताई गई है, मृत्यु हो गई । प्रतिवादी द्वारा उसकी मृत्यु के पूर्व लिखित कथन फाइल किया गया था । उसकी मृत्यु के पश्चात् हमारे समक्ष के अपीलार्थी द्वारा यह दावा करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 और 10 के अधीन आवेदन फाइल किया गया था कि वादी कुमारी अनीता अग्रवाल ने अपनी संपूर्ण संपत्ति मनतव्य अग्रवाल जो कि अवयस्क है, के हक में तारीख 16 दिसंबर, 2014 की एक विल द्वारा वसीयत कर दी थी । इसके पश्चात् इस आवेदन का उत्तर फाइल किया गया था और निचले न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 और 10 के अधीन आवेदन का यह अभिनिर्धारित करते हुए न्यायनिर्णयन कर दिया कि विल को सम्यक् रूप से साबित नहीं किया गया है और परिणामत: अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया था । अत: वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

4. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि आवेदन

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 3 के अतिरिक्त नियम 10 के अधीन भी फाइल किया गया था । यह दलील दी गई है कि यदि विल साबित न भी हुई हो तो भी न्यायालय इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि चूंकि आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के अधीन भी था इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(1) के अनुसार अपील इस न्यायालय के समक्ष ग्राह्य है । उन्होंने अपनी दलील के समर्थन में **जलादी सुगुना (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **सत्य साईं सेन्ट्रल ट्रस्ट और अन्य**[1] वाले मामले के निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि किसी वाद को बनाए रखने के प्रयोजन के लिए विधिक वारिसों का केवल परिसीमित प्रयोजन है और यदि इसके इनकार के लिए धारा 10 के अधीन अनुध्यात किसी हित का समनुदेशन या सृजन या न्यागमन हुआ है तो इससे इनकार अपील के लिए स्वीकार्य होगा । यह दलील दी गई है कि यदि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 5 के अधीन आवेदन मंजूर किया जाता है तो यह बात ऐसे व्यक्ति को जिसे विधिक प्रतिनिधि बनाया जाना है, संपत्ति में जो वाद की विषयवस्तु है और जिसके बारे में मृतक की संपदा के लिए अन्य परस्पर दावा किया गया है, कोई अधिकार प्रदत्त नहीं करेगी । अत: मृतक की संपदा के प्रतिनिधित्व के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के अधीन आवेदन कायम रहेगा ।

5. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेलों ने प्रबल रूप से इसका विरोध करते हुए यह दलील दी है कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के साथ पठित नियम 10 के अधीन आवेदन नियम 3 और 10 के रूप में स्वीकार किया गया है तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 5 के अधीन आवेदन वादी के विधिक प्रतिनिधियों का पता लगाने के लिए है । यह कहा गया है कि विल के आधार पर न्यायालय ने यह पाया है कि विल साबित नहीं हुई है और परिणामत: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के अधीन आवेदन भी खारिज किया गया था । यह कहा गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के अधीन आवेदन प्राथमिक रूप से खारिज कर दिया गया था और प्रकीर्ण अपील सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1

---

[1] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2866 = (2008) 8 एस. सी. सी. 521.

तथा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 104 के अधीन अनुध्यात नहीं है और परिणामस्वरूप अपील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

6. अपील के साथ फाइल किए गए दस्तावेजों का परिशीलन किया गया । दस्तावेजों के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि कुमारी अनीता अग्रवाल द्वारा वाद विभिन्न अनुतोषों का दावा करते हुए राज्य सहित 7 प्रतिवादियों के विरुद्ध फाइल किया गया था । वाद के लंबन के दौरान एकमात्र वादी कुमारी अनीता अग्रवाल की तारीख 22 जनवरी, 2015 को मृत्यु हो गई और इसलिए अवयस्क मनतव्य अग्रवाल द्वारा अपने संरक्षक के ज़रिए यह कहते हुए आवेदन फाइल किया गया था कि संपूर्ण संपत्ति जो वाद की विषयवस्तु है, अवयस्क के हक में वसीयत की गई है । अत: अवयस्क को उसके संरक्षक के ज़रिए वाद में वादी/विधिक वारिस के रूप में प्रतिस्थापित किया जाए । इस आवेदन का उत्तर फाइल किया गया था और इसलिए निचले न्यायालय ने विधिक वारिसों के ऐसे अधिकार के संबंध में जांच के लिए कार्यवाही की थी जैसाकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 5 के अधीन न्यायालय को सशक्त किया गया है ।

7. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 5 न्यायालय को विधिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न का अवधारण करने के लिए अनुज्ञात करता है । चूंकि हमारे समक्ष के अपीलार्थी ने विल के आधार पर विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया है इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 5 के अधीन जांच के दौरान विल को साबित करने के लिए साक्षियों की परीक्षा की गई है । विद्वान् निचले न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि विल किसी भी प्रकार से निष्पादित साबित नहीं हुई थी इसलिए इसके परिणामस्वरूप सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के अधीन आवेदन खारिज किए जाने योग्य है ।

8. न्यायालय ने तारीख 14 अक्तूबर, 2016 को ही उक्त आदेश पारित करने के पश्चात् यह अभिलिखित किया कि वादी के विरुद्ध वाद का उपशमन किया जाता है । चूंकि प्रतिदावा अस्तित्व युक्त था इसलिए प्रतिवादी के साक्ष्य को अभिलिखित करने की कार्यवाही की गई । यह न्यायालय इस प्रक्रम पर इस विवाद्यक पर विचार करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि प्राथमिक रूप से प्रश्न सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1 के अधीन अपील की ग्राह्यता से संबंधित है ।

9. तारीख 14 अक्तूबर, 2016 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि उस विल को जिसके आधार पर अपीलार्थी ने विधिक वारिस होने का दावा किया था, नकार दिया गया है । इसके पश्चात् न्यायालय ने प्राथमिक रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि मामले में कोई विधिक वारिस मौजूद नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 4 भी ऐसी स्थिति के बारे में उपबंध करता है । यह तात्पर्यित है कि जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकार की मृत्यु के पश्चात् उसका कोई विधिक प्रतिनिधि मौजूद नहीं है वहां न्यायालय वाद के किसी पक्षकार के आवेदन पर ऐसे व्यक्ति की अनुपस्थिति में कार्यवाही कर सकता है जो मृतक व्यक्ति की संपदा का प्रतिनिधित्व कर रहा है अथवा आदेश द्वारा सामान्य-प्रशासक की नियुक्ति कर सकता है अथवा न्यायालय के अधिकारी की या ऐसे किसी अन्य व्यक्ति की नियुक्ति कर सकता है जैसा कि न्यायालय प्रतिनिधित्व करने के लिए उचित समझे । **जलादी सुगुना** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित मत किसी भी प्रकार से इस मत के विरोध में नहीं है कि किसी मामले में विधिक प्रतिनिधि केवल परिसीमित प्रयोजन के लिए अभिलेख पर लाए जाते हैं । वर्तमान मामले में वादी ने अपने हक में निष्पादित एक विल के आधार पर अपने अधिकार का दावा किया था । विल से इनकार किया गया है और अपीलार्थी के सुने जाने के अधिकार से इनकार किया गया है । यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां निचले न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 4-क के अधीन आवेदन फाइल किया गया हो जिससे कि **जलादी सुगुना** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त इस मत का फायदा लिया जा सके कि मृतक की संपदा के प्रतिनिधित्व के लिए कोई आवेदन फाइल किया जा सकता है ।

10. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 10, वाद में अंतिम आदेश पारित करने के पूर्व समनुदेशन के मामले में प्रक्रिया के बारे में उपबंध करता है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 10 इस प्रकार है :–

सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22, नियम 10

"**वाद में अंतिम आदेश होने के पूर्व समनुदेशन की दशा में प्रक्रिया** – (1) वाद के लंबित रहने के दौरान किसी हित के

समनुदेशन, सृजन या न्यागमन की अन्य दशाओं में, वाद न्यायालय की इजाज़त से उक्त व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध चालू रखा जा सकेगा जिसको ऐसा हित प्राप्त या न्यागत हुआ है ।

(2) किसी डिक्री की अपील के लंबित रहने के दौरान उस डिक्री की कुर्की के बारे में यह समझा जाएगा कि वह ऐसा हित है जिससे वह व्यक्ति जिसने ऐसी कुर्की कराई थी, उपनियम (1) का फायदा उठाने का हकदार हो गया है ।"

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि किसी हित के समनुदेशन, सृजन या न्यागमन की दशा में वाद न्यायालय की इजाज़त से चालू रखा जा सकेगा ।

11. न्यायालय ने अपने न्यायिक आदेश द्वारा यह उल्लेख किया है कि अपीलार्थी के हक में किसी हित का न्यागमन या सृजन नहीं माना जा सकता क्योंकि उस विल को जिसके आधार पर अधिकार का दावा किया गया था, नकार दिया गया है । वहां न्यायनिर्णयन किए जाने के लिए भिन्न स्थिति होती जहां मृतक की संपदा के प्रतिनिधित्व के लिए विचार के लिए कोई आवेदन फाइल किया जाता । न्यायालय ऐसे किसी मामले में गुण-दोष और प्रक्रिया के अनुसार आवेदन पर विचार करता । तथापि, वर्तमान मामले में अभी तक ऐसा कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया है ।

12. आवेदन और आदेश से जिसके द्वारा अपीलार्थी के अधिकार से इनकार किया गया था, प्राथमिक रूप से यह प्रतीत होता है कि संपूर्ण दावा उस विल के आधार पर किया गया था जिसके द्वारा विधिक प्रतिनिधि होने का दावा किया गया है और प्रथमदृष्ट्या यह उपदर्शित होता है कि आदेश में नियम 10 का कोई उल्लेख नहीं है । ऐसे मामले में **मंगलू राम देवांगन** बनाम **सुरेन्द्र सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत से स्थिति विनियमित होगी जिसमें न्यायालय ने पैरा 16 और 19 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"16. प्रथमतः हम चौथी अपेक्षा पर विचार करते हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 और 5 के अधीन पारित किसी आदेश के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 104 या

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 773.

आदेश 43, नियम 1 के अधीन भी कोई अपील फाइल किए जाने का कोई उपबंध नहीं है । तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 के नियम 1 का खंड (ट) यह उपबंध करता है कि धारा 104 के उपबंधों के अधीन वाद के उपशमन या खारिजी को अपास्त करने से इनकार करने के आदेश में जो आदेश 22 के नियम 9 के अधीन दिया गया हो, अपील की जा सकेगी ।

19. अतः यह उल्लेखनीय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 और 5 के अधीन कोई आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 104 या आदेश 43, नियम 1 के अधीन अपीलनीय नहीं है ।"

13. चूंकि उपर्युक्त प्रतिपादनाओं का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आक्षेपाधीन आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के अधीन पारित किया गया है इसलिए इस न्यायालय द्वारा प्रकीर्ण अपील ग्राह्य नहीं होगी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस प्रक्रम पर आदेश की प्रमाणित प्रति दिलाने का अनुरोध किया है जिससे कि विधि के अधीन अपीलार्थी को उपलब्ध समुचित उपचार प्राप्त हो सके ।

14. तद्नुसार कार्यालय (रजिस्ट्री) को यह निदेश दिया जाता है कि वह दस्तावेज की फोटो प्रति कराने के पश्चात् आदेश की प्रमाणित प्रति उपलब्ध कराए ।

15. तद्नुसार अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

दीपाली ऋषिदास (श्रीमती) और अन्य

बनाम

श्रीमती बेलाश मणि ऋषिदास और अन्य

तारीख 23 जुलाई, 2018

न्यायमूर्ति एस. तालपत्रा

उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 372 [सपठित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 11] – मृतक द्वारा ऋण और प्रतिभूतियां छोड़ी जानी – उत्तराधिकार प्रमाणपत्र – दूसरी पत्नी और उसके बच्चों द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन – मृतक की पारिवारिक पेंशन के लिए केवल प्रथम पत्नी ही हक़दार होगी – तथापि, अन्य सेवानिवृत्ति फायदों, ऋणों और प्रतिभूतियों में मृतक की प्रथम पत्नी और बच्चों के अतिरिक्त दूसरी पत्नी के बच्चों को भी अंश दिया जाएगा ।

नारायण ऋषिदास की तारीख 8 फरवरी, 2014 को निर्वसीयती मृत्यु हो गई थी । हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ मृतक व्यक्ति के ऋणों और प्रतिभूतियों के संबंध में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की मंजूरी के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 372 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । जब त्रिपुरा दर्पण नामक समाचारपत्र में लोक सूचना प्रकाशित की गई तो अपीलार्थी सं. 1, 2, 3 और 4 ने यह दावा करते हुए स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए एक आवेदन फाइल किया कि दीपाली ऋषिदास नारायण ऋषिदास की पत्नी थी और अपीलार्थी सं. 2, 3 और 4 नारायण ऋषिदास के पुत्र और पुत्रियां हैं । न्यायालय ने जांच के प्रयोजन के लिए उन्हें पक्षकार बना लिया । तथापि, विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् तारीख 11 जुलाई, 2016 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 (बेलाश मणि ऋषिदास) मृतक नारायण ऋषिदास की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है और प्रत्यर्थी सं. 2 उनके विवाह से उत्पन्न उनकी पुत्री है । इस परिप्रेक्ष्य में और इस निष्कर्ष के आधार पर कि नारायण ऋषिदास ने बेलाश मणि ऋषिदास को अपनी पत्नी के रूप में नामनिर्दिष्ट किया था, अपीलार्थी जो 2015 के प्रकीर्ण (उत्तराधिकार) सं. 4 में की कार्यवाहियों में विरोधी पक्षकार हैं, तारीख 11 जुलाई, 2017 के उपर्युक्त आदेश द्वारा नारायण ऋषिदास की

मृत्यु पर उपार्जित पेंशन संबंधी फायदों सहित ऋणों और प्रतिभूतियों से कोई फायदा प्राप्त करने के लिए हकदार घोषित नहीं किए गए । अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि नारायण ऋषिदास (प्रदर्श-4 के अनुसार) एक सरकारी कर्मचारी था । यह अपील सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, न्यायालय सं. 2, त्रिपुरा पश्चिम, अगरतला द्वारा 2015 के प्रकीर्ण (उत्तराधिकार) सं. 4 में तारीख 11 जुलाई, 2016 को पारित आदेश के विरुद्ध भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 384 के अधीन फाइल की गई है । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथापि, त्रिपुरा राज्य सरकार कर्मचारी ग्रुप बीमा स्कीम, 1983 के अधीन मृतक कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत नामनिर्देशिती से यह स्पष्ट होता है कि मृतक कर्मचारी अर्थात् नारायण ऋषिदास ने अपनी पत्नी के रूप में बेलाश मणि ऋषिदास के हक में उक्त नामनिर्देशन पेश किया है । इसके अतिरिक्त बेलाश मणि ऋषिदास ने जो नारायण ऋषिदास से नाराज़ थी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन 2009 का प्रकीर्ण आवेदन सं. 293 फाइल किया था । उक्त कार्यवाही में मृतक कर्मचारी नारायण ऋषिदास को यह निदेश दिया गया था कि वह बेलाश मणि ऋषिदास और अपनी अवयस्क पुत्री को 5 हजार रुपए प्रतिमास भरणपोषण के रूप में संदत्त करे । तारीख 1 जनवरी, 2002 के आदेश में यह मत व्यक्त किया गया है कि भरणपोषण बेलाश मणि ऋषिदास को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन वापस ली गई उक्त कार्यवाही के अधीन संदत्त किया जाएगा । उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी गई थी । अतः बेलाश मणि ऋषिदास और सोमा ऋषिदास की नारायण ऋषिदास की पुत्री और पत्नी के रूप में प्रास्थिति को आक्षेपित नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तरजीविता प्रमाणपत्र से भी यह प्रकट होता है कि बेलाश मणि ऋषिदास और सोमा ऋषिदास के नाम उत्तरजीविता प्रमाणपत्र में क्रमशः नारायण ऋषिदास की पत्नी और पुत्री के रूप में दर्ज किए गए हैं । उक्त उत्तरजीविता प्रमाणपत्र में माता सुराधानी ऋषिदास का नाम निगमित किया गया है । तारीख 23 फरवरी, 2015 के दूसरे उत्तरजीविता प्रमाणपत्र में सुराधानी ऋषिदास, दीपाली ऋषिदास, नयन ऋषिदास, रोमा ऋषिदास और राखल ऋषिदास के नाम मौजूद हैं । कार्यवाहियों में सुराधानी ऋषिदास की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती दीपाली ऋषिदास, श्रीमती रोमा ऋषिदास, श्री नयन ऋषिदास और श्री राखल

ऋषिदास के नाम जोड़ना प्रस्तावित था तथापि, उसके स्थान पर केवल उसकी पुत्रियों के नाम निगमित किए गए हैं । 2001 के प्रकीर्ण सं. 124 में तारीख 22 अक्तूबर, 2003 को पारित आदेश सहित संलग्न दस्तावेज से यह स्पष्ट होता है कि बेलाश मणि ऋषिदास मृतक कर्मचारी अर्थात् नारायण ऋषिदास के विधितः विवाहिता पत्नी है और पेश किए गए दस्तावेजों को दृष्टिगत करते हुए सोमा ऋषिदास, नारायण ऋषिदास और बेलाश मणि ऋषिदास की पुत्री है और दीपाली ऋषिदास नारायण ऋषिदास की दूसरी पत्नी है । बेलाश मणि ऋषिदास और दीपाली ऋषिदास की सास सुराधानी ऋषिदास ने यह कहा है कि उसके पुत्र नारायण ऋषि दास का बेलाश मणि ऋषिदास के साथ कोई विवाह संपन्न नहीं हुआ था । तथापि, उसने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि दीपाली ऋषिदास और नारायण ऋषिदास का विवाह हुआ था । तथापि, यह कथन हिन्दू विवाह की अनिवार्य शर्तों को देखते हुए पर्याप्त नहीं है । यह स्पष्ट है कि दीपाली ऋषिदास और नारायण ऋषिदास का तात्पर्यित विवाह नारायण ऋषिदास और बेलाश मणि ऋषिदास के पश्चात् संपन्न हुआ था । इस प्रकार नारायण ऋषिदास और दीपाली ऋषिदास का विवाह एक ऐसा विवाह था जो नारायण ऋषिदास और बेलाश मणि ऋषिदास के विवाह के अस्तित्व के साथ हुआ था । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 5 के निबंधनों में कोई व्यक्ति विवाह के समय जीवित पति-पत्नी के होते हुए विवाह नहीं कर सकता । यदि हिन्दू विवाह की उक्त शर्त के भंग में कोई विवाह होता है तो वह हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के अधीन विधि की दृष्टि में शून्यकरणीय है और इसलिए दीपाली ऋषिदास हिन्दू विवाह के अर्थान्तर्गत 'पत्नी' के रूप में नहीं कही जा सकती और इस प्रकार दीपाली ऋषिदास ऐसे किसी फायदे का दावा नहीं कर सकती जो एक सरकारी कर्मचारी अर्थात् नारायण ऋषिदास की मृत्यु से उत्पन्न हुए हैं । ऋणों और प्रतिभूतियों का 6,80,577/- रुपए के रूप में निर्धारण (आकलन) किया गया है । तथापि, दीपाली ऋषिदास से उत्पन्न बच्चे मृतक नारायण ऋषिदास के ऋण और प्रतिभूतियों सहित उसकी संपदा और आस्तियों के समान रूप से हकदार होंगे । अतः जारी किए गए उत्तराधिकार प्रमाणपत्र को कायम रखा जाता है । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि पेंशन बेलाश मणि ऋषिदास के सिवाय और कोई आहरित नहीं कर सकता । तथापि, छुट्टी वेतन, ग्रुप बीमा धनराशि, भविष्य निधि की रकम के रूप में

अन्य वित्तीय आगम बेलाश मणि ऋषिदास, सोमा ऋषिदास, नयन ऋषिदास, रोमा ऋषिदास और राखल ऋषिदास के बीच और सैद्धान्तिक रूप से सुराधानी ऋषिदास के बीच समान भागों में वितरित किए जाएंगे । चूंकि सुराधानी ऋषिदास की कार्यवाहियों के दौरान मृत्यु हो गई है इसलिए उसका अंश उसकी दो पुत्रियों अर्थात् कमला ऋषिदास और रोमा ऋषिदास वर्ग-1 उत्तराधिकारियों के बीच विभाजित किया जाएगा । उपर्युक्त अभिव्यक्त मत के निबंधनों में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र जारी किया जाए । (पैरा 6, 8 और 9)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की एम. एफ. ए. सं. 1.

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 384 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री बी. पाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एन. मजूमदार

न्यायमूर्ति एस. तालपत्रा – अपीलार्थियों की विद्वान् काउंसेल सुश्री एस. देव गुप्ता के अनुदेश पर उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री बी. पाल और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री एन. मजूमदार को सुना गया । तथापि, जब मामला पुकारा गया तो सम्यक् सूचना के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 3 (i) और (ii) की ओर से प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई उपस्थित नहीं है ।

2. यह अपील सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, न्यायालय सं. 2, त्रिपुरा पश्चिम, अगरतला द्वारा 2015 के प्रकीर्ण (उत्तराधिकार) सं. 4 में तारीख 11 जुलाई, 2016 को पारित आदेश के विरुद्ध भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 384 के अधीन फाइल की गई है ।

3. नारायण ऋषिदास की तारीख 8 फरवरी, 2014 को निर्वसीयती मृत्यु हो गई थी । हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ मृतक व्यक्ति के ऋणों और प्रतिभूतियों के संबंध में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की मंजूरी के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 372 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । जब त्रिपुरा दर्पण नामक समाचारपत्र में लोक सूचना प्रकाशित की गई तो अपीलार्थी सं. 1, 2, 3 और 4 ने यह दावा करते हुए स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए एक आवेदन फाइल किया कि दीपाली ऋषिदास नारायण ऋषिदास की पत्नी थी और

अपीलार्थी सं. 2, 3 और 4 नारायण ऋषिदास के पुत्र और पुत्रियां हैं । न्यायालय ने जांच के प्रयोजन के लिए उन्हें पक्षकार बना लिया । तथापि, विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् तारीख 11 जुलाई, 2016 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 (बेलाश मणि ऋषिदास) मृतक नारायण ऋषिदास की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है और प्रत्यर्थी सं. 2 उनके विवाह से उत्पन्न उनकी पुत्री है । इस परिप्रेक्ष्य में और इस निष्कर्ष के आधार पर कि नारायण ऋषिदास ने बेलाश मणि ऋषिदास को अपनी पत्नी के रूप में नामनिर्दिष्ट किया था, अपीलार्थी जो 2015 के प्रकीर्ण (उत्तराधिकार) सं. 4 में की कार्यवाहियों में विरोधी पक्षकार हैं, तारीख 11 जुलाई, 2017 के उपर्युक्त आदेश द्वारा नारायण ऋषिदास की मृत्यु पर उपार्जित पेंशन संबंधी फायदों सहित ऋणों और प्रतिभूतियों से कोई फायदा प्राप्त करने के लिए हकदार घोषित नहीं किए गए । अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि नारायण ऋषिदास (प्रदर्श-4 के अनुसार) एक सरकारी कर्मचारी था । विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया :–

> "स्वीकृततः आवेदक सं. 1, और 2 और विरोधी पक्षकार सं. 1 मृतक नारायण ऋषिदास के वास्तविक विधिक वारिस हैं । तथापि, हम इस स्थिति में नहीं हैं कि मृतक द्वारा छोड़े गए ऋणों और प्रतिभूतियों में पक्षकारों के अंशों को घोषित कर सकें क्योंकि यह 1925 के अधिनियम की धारा 387 द्वारा वर्जित है । तथापि, चूंकि मृतक ने तारीख 4 सितंबर, 2014 के प्रथम उत्तरजीविता प्रमाणपत्र के अनुसार केवल तीन उत्तरजीवी सदस्यों को छोड़ा है इसलिए प्रदर्श-8 के साथ इस दस्तावेज को प्राथमिकता देनी होगी और इसलिए वे सामान्य बोलचाल के अनुसार मृतक के सेवानिवृत्ति फायदों में समान अंश पाने के हकदार हैं । लड़ने वाले पक्षकारों के दस्तावेजों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर विरोधी सं. 2 से 5 द्वारा पेश किए गए दस्तावेज आवेदकों द्वारा पेश किए गए दस्तावेजों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं ।"

4. अतः उपर्युक्त मत व्यक्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बेलाश मणि ऋषिदास मृतक नारायण ऋषिदास की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है । अत: साक्ष्य में पेश किए गए दस्तावेजों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 बेलाश मणि ऋषिदास प्रत्यर्थी सं. 2 सोमा ऋषिदास और मृतक सुराधानी ऋषिदास (प्रत्यर्थी सं.

3) मृतक द्वारा छोड़े गए ऋणों और प्रतिभूतियों जो 6,80,577/- रुपए (छह लाख अस्सी हजार पांच सौ सतत्तर रुपए) की हैं, में से प्रत्येक 1/3 अंश पाने का हकदार है । यह निदेश दिया गया है कि विधि की सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए उत्तराधिकार प्रमाणपत्र जारी किया जाए ।

5. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री पाल ने यह दलील दी है कि उपर्युक्त निर्णय जिसके बारे में तारीख 11 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया गया है, निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित साक्ष्य का पूर्ण मूल्यांकन न करने की कमी से ग्रसित है । विद्वान् काउंसेल श्री पाल ने अभिलेख का निर्देश करते हुए यह उपदर्शित किया है कि बनाए गए विरोधी पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए नारायण ऋषिदास, रोमा ऋषिदास और राखल ऋषिदास के जन्म प्रमाणपत्र हमारे समक्ष के अपीलार्थियों के हैं । यह स्पष्ट है कि इन जन्म प्रमाणपत्रों में बनाए गए विरोधी पक्षकार अर्थात् नारायण ऋषिदास, रोमा ऋषिदास और राखल ऋषिदास नारायण ऋषिदास के पुत्रों और पुत्री के रूप में दर्शाए गए हैं और इन जन्म प्रमाणपत्रों या प्रास्थितियों के विरुद्ध और यहां तक कि तारीख 23 फरवरी, 2015 के उत्तरजीविता प्रमाणपत्र के विरुद्ध भी कोई आक्षेप नहीं किया गया है ।

6. तथापि, त्रिपुरा राज्य सरकार कर्मचारी ग्रुप बीमा स्कीम, 1983 के अधीन मृतक कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत नाम-निर्देशिती से यह स्पष्ट होता है कि मृतक कर्मचारी अर्थात् नारायण ऋषिदास ने अपनी पत्नी के रूप में बेलाश मणि ऋषिदास के हक में उक्त नामनिर्देशन पेश किया है । इसके अतिरिक्त बेलाश मणि ऋषिदास ने जो नारायण ऋषिदास से नाराज़ थी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन 2009 का प्रकीर्ण आवेदन सं. 293 फाइल किया था । उक्त कार्यवाही में मृतक कर्मचारी नारायण ऋषिदास को यह निदेश दिया गया था कि वह बेलाश मणि ऋषिदास और अपनी अवयस्क पुत्री को 5 हजार रुपए प्रतिमास भरणपोषण के रूप में संदत्त करे । तारीख 1 जनवरी, 2002 के आदेश में यह मत व्यक्त किया गया है कि भरणपोषण बेलाश मणि ऋषिदास को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन वापस ली गई उक्त कार्यवाही के अधीन संदत्त किया जाएगा । उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी गई थी । अतः बेलाश मणि ऋषिदास और सोमा ऋषिदास की नारायण ऋषिदास की पुत्री और पत्नी के रूप में प्रास्थिति को आक्षेपित नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त

अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तरजीविता प्रमाणपत्र से भी यह प्रकट होता है कि बेलाश मणि ऋषिदास और सोमा ऋषिदास के नाम उत्तरजीविता प्रमाणपत्र में क्रमशः नारायण ऋषिदास की पत्नी और पुत्री के रूप में दर्ज किए गए हैं । उक्त उत्तरजीविता प्रमाणपत्र में माता सुराधानी ऋषिदास का नाम निगमित किया गया है । तारीख 23 फरवरी, 2015 के दूसरे उत्तरजीविता प्रमाणपत्र में सुराधानी ऋषिदास, दीपाली ऋषिदास, नयन ऋषिदास, रोमा ऋषिदास और राखल ऋषिदास के नाम मौजूद हैं । कार्यवाहियों में सुराधानी ऋषिदास की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती दीपाली ऋषिदास, श्रीमती रोमा ऋषिदास, श्री नयन ऋषिदास और श्री राखल ऋषिदास के नाम जोड़ना प्रस्तावित था तथापि, उसके स्थान पर केवल उसकी पुत्रियों के नाम निगमित किए गए हैं ।

7. अतः यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या बेलाश मणि ऋषिदास और नारायण ऋषिदास का विवाह अथवा दीपाली ऋषिदास और नारायण ऋषिदास का विवाह पूर्णतया विधिमान्य है । यदि इनमें से किसी विवाह को विधिमान्य माना जाता है तो क्या इनमें से एक विवाह अविधिमान्य विवाह मानने योग्य होगा ?

8. 2001 के प्रकीर्ण सं. 124 में तारीख 22 अक्तूबर, 2003 को पारित आदेश सहित संलग्न दस्तावेज से यह स्पष्ट होता है कि बेलाश मणि ऋषिदास मृतक कर्मचारी अर्थात् नारायण ऋषिदास के विधितः विवाहिता पत्नी है और पेश किए गए दस्तावेजों को दृष्टिगत करते हुए सोमा ऋषिदास, नारायण ऋषिदास और बेलाश मणि ऋषिदास की पुत्री है और दीपाली ऋषिदास नारायण ऋषिदास की दूसरी पत्नी है । बेलाश मणि ऋषिदास और दीपाली ऋषिदास की सास सुराधानी ऋषिदास ने यह कहा है कि उसके पुत्र नारायण ऋषि दास का बेलाश मणि ऋषिदास के साथ कोई विवाह संपन्न नहीं हुआ था । तथापि, उसने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि दीपाली ऋषिदास और नारायण ऋषिदास का विवाह हुआ था । तथापि, यह कथन हिन्दू विवाह की अनिवार्य शर्तों को देखते हुए पर्याप्त नहीं है । यह स्पष्ट है कि दीपाली ऋषिदास और नारायण ऋषिदास का तात्पर्यित विवाह नारायण ऋषिदास और बेलाश मणि ऋषिदास के पश्चात् संपन्न हुआ था । इस प्रकार नारायण ऋषिदास और दीपाली ऋषिदास का विवाह एक ऐसा विवाह था जो नारायण ऋषिदास और बेलाश मणि ऋषिदास के विवाह के अस्तित्व के साथ हुआ था ।

9. हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 5 के निबंधनों में कोई व्यक्ति विवाह के समय जीवित पति-पत्नी के होते हुए विवाह नहीं कर सकता । यदि हिन्दू विवाह की उक्त शर्त के भंग में कोई विवाह होता है तो वह हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के अधीन विधि की दृष्टि में शून्यकरणीय है और इसलिए दीपाली ऋषिदास हिन्दू विवाह के अर्थान्तर्गत 'पत्नी' के रूप में नहीं कही जा सकती और इस प्रकार दीपाली ऋषिदास ऐसे किसी फायदे का दावा नहीं कर सकती जो एक सरकारी कर्मचारी अर्थात् नारायण ऋषिदास की मृत्यु से उत्पन्न हुए हैं । ऋणों और प्रतिभूतियों का 6,80,577/- रुपए के रूप में निर्धारण (आकलन) किया गया है । तथापि, दीपाली ऋषिदास से उत्पन्न बच्चे मृतक नारायण ऋषिदास के ऋण और प्रतिभूतियों सहित उसकी संपदा और आस्तियों के समान रूप से हकदार होंगे । अतः जारी किए गए उत्तराधिकार प्रमाणपत्र को कायम रखा जाता है । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि पेंशन बेलाश मणि ऋषिदास के सिवाय और कोई आहरित नहीं कर सकता । तथापि, छुट्टी वेतन, ग्रुप बीमा धनराशि, भविष्य निधि की रकम के रूप में अन्य वित्तीय आगम बेलाश मणि ऋषिदास, सोमा ऋषिदास, नयन ऋषिदास, रोमा ऋषिदास और राखल ऋषिदास के बीच और सैद्धान्तिक रूप से सुराधानी ऋषिदास के बीच समान भागों में वितरित किए जाएंगे । चूंकि सुराधानी ऋषिदास की कार्यवाहियों के दौरान मृत्यु हो गई है इसलिए उसका अंश उसकी दो पुत्रियों अर्थात् कमला ऋषिदास और रोमा ऋषिदास वर्ग-1 उत्तराधिकारियों के बीच विभाजित किया जाएगा । उपर्युक्त अभिव्यक्त मत के निबंधनों में उत्तराधिकार प्रमाणपत्र जारी किया जाए ।

10. परिणामतः 11 जुलाई, 2016 के आदेश में हस्तक्षेप करते हुए इसे उपांतरित किया जाता है ।

11. तद्नुसार यह अपील ऊपर उपदर्शित सीमा तक मंजूर की जाती है ।

12. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

मह.

स्नेहांसु सेन गुप्ता

बनाम

सितांगसू सेन गुप्ता और एक अन्य

तारीख 7 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति जयंत नाथ

उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 263 और 278 – विल का प्रोबेट – मंजूरी के समय आवश्यक पक्षकार न बनाने की दलील – आवेदक द्वारा प्रोबेट की जानकारी होने के बावजूद 17 वर्ष तक कोई कार्रवाई न की जानी – सामान्यतया पक्षकार न बनाने की कमी प्रोबेट के रद्दकरण को आमंत्रित करती है – तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रद्दकरण के लिए वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करना उचित नहीं है ।

मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता (वसीयतकर्ता) की जो आवेदक का चाचा और प्रत्यर्थी सं. 1 का सौतेला भाई था, तारीख 6 जनवरी, 1997 को प्रथम वर्ग का कोई विधिक वारिस छोड़े बिना अविवाहित रूप में नई दिल्ली में मृत्यु हो गई थी । स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता नई दिल्ली के चितरंजन पार्क स्थित सम्पत्ति सं. बी-122 का स्वामी था । श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का एक सगा भाई था जिसका नाम श्री सुधांशु कुमार सेन गुप्ता है जिसका जन्म उसके पिता श्री सुरेश चन्द्र सेन गुप्ता के प्रथम विवाह से हुआ था । प्रत्यर्थी सं. 1 स्वर्गीय सुरेश चन्द्र सेन गुप्ता के दूसरे विवाह से उत्पन्न पुत्र होने के नाते श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का सौतेला भाई था । प्रत्यर्थी सं. 1 ने एक वसीयत मामला सं. 46/2000 फाइल किया था जो भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 276 के अधीन प्रशासन पत्र की मंजूरी के लिए फाइल किया गया था और जिसमें तारीख 26 फरवरी, 1995 की विल उपाबद्ध की गई थी । प्रत्यर्थी सं. 1 ने यह अभिवचन किया कि मृतक श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता अविवाहित था और प्रत्यर्थी सं. 1 मृतक का एकमात्र भाई है और प्रत्यर्थी सं. 1 के सिवाय अन्य कोई भाई या बहन नहीं है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 263 के अधीन वर्तमान आवेदन उस प्रोबेट के रद्दकरण के लिए फाइल किया गया है जो 2000 के वसीयत

मामला सं. 46 में तारीख 2 सितंबर, 2003 के निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के हक़ में मंजूर किया गया था । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 263 के अधीन किसी प्रोबेट या प्रशासन पत्र की मंजूरी को केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब यह कपटपूर्वक या मिथ्या सुझाव करके या न्यायालय से कतिपय सामग्री छुपाकर प्राप्त किया गया है या जब ऐसी मंजूरी आवश्यक तथ्यों के असत्य अभिकथनों द्वारा अभिप्राप्त की गई है । उक्त अधिनियम की धारा 278 के अधीन कोई आवेदक प्रशासन पत्रों के अनुरोध के लिए आवेदन में मृतक के कुटुंब या अन्य नातेदारों को पक्षकार बनाने के लिए आबद्ध है । निस्संदेह विवाद्यक यह है कि क्या न्यायालय के समक्ष के आवेदक का मृतक की संपदा में उत्तराधिकारी के रूप में कोई हित है । यदि इसका उत्तर हां है तो वह एक आवश्यक पक्षकार होगा । यह स्वीकृत तथ्य है कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा मृतक वसीयतकर्ता श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का स्वयं को एकमात्र भाई होने का दावा करते हुए गलत और मिथ्या कथन किया गया है । तथ्यतः मामला यह है कि वह मृतक का सौतेला भाई है न कि सगा भाई । मृतक वसीयतकर्ता के सगे भाई श्री सुधांश कुमार सेन गुप्ता की मृतक की मृत्यु होने से पूर्व ही मृत्यु हो गई थी और उसने अपने पीछे अपने पुत्र अर्थात् आवेदक को छोड़ा था । आवेदन में इस तथ्य को गलत रूप से पेश किया गया है । तथापि, क्या इस महत्वपूर्ण तथ्य को छुपाना न्यायालय से यह अभिनिर्धारित करने की अपेक्षा करता है कि प्रोबेट की मंजूरी कपटपूर्ण उपाय द्वारा अभिप्राप्त की गई थी और इसलिए तारीख 2 सितंबर, 2003 के निर्णय द्वारा प्रशासन पत्र की मंजूरी को रद्द किया जाना चाहिए । न्यायालय के समक्ष यह स्वीकृत स्थिति है कि यदि प्रत्यर्थी सं. 1 कोई विल प्रस्तुत नहीं करता तो वह हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन प्रश्नगत संपत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करता । ऐसा इसलिए है कि वर्ग 2 की प्रविष्टि II के अधीन सौतेले भाई सहित भाई को, भाई के पुत्र के ऊपर अधिमानता मिलती । भाई के पुत्र का वर्ग 2 की सूची iv में उल्लेख है । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 9 के अधीन वर्ग 2 में की प्रथम प्रविष्टि को दूसरी प्रविष्टि पर वरीयता दी गई है । इसी प्रकार दूसरी प्रविष्टि को तीसरी प्रविष्टि के ऊपर अधिमान दिया गया है । आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस स्थिति को विवादित नहीं किया गया है कि यदि कतिपय कारणों से विल को त्रुटिपूर्ण या जाली

अभिनिर्धारित किया जाता है तो प्रत्यर्थी सं. 1 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के निबंधनों में उक्त संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा । यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि यदि न्यायालय यह भी अभिनिर्धारित करे कि विल स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता द्वारा विधिमान्य रूप से और विधिक रूप से निष्पादित नहीं की गई थी तो भी प्रत्यर्थी स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की संपदा का उत्तराधिकारी होगा जब तक कि आवेदक कुटुंब के समझौते के जैसाकि दावा किया गया है, समान प्रतिकूल कोई बात साबित करने में सफल नहीं होता । न्यायालय के मतानुसार इस मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आवदेक को एक पक्षकार के रूप में पक्षकार बनाए जाने का अधिकार था । न्यायालय के मतानुसार जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, यदि न्यायालय संलग्न विल के साथ प्रशासन पत्र की मंजूरी को अपास्त भी कर दे, जैसाकि इस आवेदन में अनुरोध किया गया है, तो भी प्रत्यर्थी सं. 1 स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेना गुप्ता की संपदा का उत्तराधिकारी होता । इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी है जो मुझे आवेदक के हक में अनुतोष की मंजूरी के लिए आनत नहीं करता । मृतक की वर्ष 1997 में मृत्यु हो गई थी जबकि वर्तमान आवेदन वर्ष 2014 में फाइल किया गया है । अतः आवेदक ने 17 वर्ष तक स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की संपदा के लिए किसी अधिकार का दावा नहीं किया । यह इस तथ्य के अतिरिक्त है कि उसने मृतक वसीयतकर्ता के निकट होने का दावा किया है और वसीयतकर्ता की संपदा में समान अंश होने का दावा किया है । उसने वर्ष 2014 में यह दावा किया कि स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता सदैव यह कहते थे कि उनकी संपदा पक्षकारों को समान रूप से न्यागत होगी और यह एक कुटुम्बीय इंतज़ाम था । आवेदक द्वारा अपने अधिकार का कथन करते हुए और प्रोबेट आदेश के रद्दकरण की ईप्सा करने के लिए विलंबित रूप से यह आवेदन फाइल करना विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है । न्यायालय विलंब के आधार पर भी आवेदक के हक में किसी विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए तैयार नहीं है । न्यायालय के मतानुसार उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए तारीख 2 सितंबर, 2003 के प्रोबेट आदेश के रद्दकरण के लिए कोई आधार नहीं बनता है । तद्नुसार वर्तमान आवेदन खारिज किया जाता है । आवेदक कुटुम्बीय समझौते को, यदि कोई हो, विधि के अनुसार प्रवृत्त कराने हेतु कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 10, 14, 15, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 224 डी. एल. टी. (सी. एन.) 4 : **उमेश कुमार पुष्करना और एक अन्य** बनाम **राज्य** ;	6, 13
[2005]	(2005) 12 एस. सी. सी. 154 : **मणिभाई अमईदास पटेल और एक अन्य** बनाम **दयाभाई अमईदास** ;	6, 11
[1955]	ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 566 : **अनिल बिहारी घोष** बनाम **श्रीमती लतिका बाला दासी और अन्य** ।	16

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण अधिकारिता : 2014 का टी. सी. सं. 55.

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 263 के अधीन आवेदन ।

आवेदक की ओर से — सुश्री अनीशा बनर्जी और सुश्री मधुरिमा घोष

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री वी. पी. यादव

न्यायमूर्ति जयन्त नाथ – भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 263 के अधीन वर्तमान आवेदन उस प्रोबेट के रद्दकरण के लिए फाइल किया गया है जो 2000 के वसीयत मामला सं. 46 में तारीख 2 सितंबर, 2003 के निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के हक़ में मंजूर किया गया था ।

2. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि श्री हिमांशू कुमार सेन गुप्ता (वसीयतकर्ता) की जो आवेदक का चाचा और प्रत्यर्थी सं. 1 का सौतेला भाई था, तारीख 6 जनवरी, 1997 को प्रथम वर्ग का कोई विधिक वारिस छोड़े बिना अविवाहित रूप में नई दिल्ली में मृत्यु हो गई थी । स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता नई दिल्ली के चितरंजन पार्क स्थित सम्पत्ति सं. बी-122 का स्वामी था । श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का एक सगा भाई था जिसका नाम श्री सुधांशु कुमार सेन गुप्ता है जिसका जन्म उसके पिता श्री सुरेश चन्द्र सेन गुप्ता के प्रथम विवाह से हुआ था । प्रत्यर्थी सं. 1 स्वर्गीय सुरेश चन्द्र सेन गुप्ता के दूसरे विवाह से उत्पन्न पुत्र होने के नाते श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का सौतेला भाई था ।

3. प्रत्यर्थी सं. 1 ने एक वसीयत मामला सं. 46/2000 फाइल किया था जो भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 276 के अधीन प्रशासन पत्र की मंजूरी के लिए फाइल किया गया था और जिसमें तारीख 26 फरवरी, 1995 की विल उपाबद्ध की गई थी । प्रत्यर्थी सं. 1 ने यह अभिवचन किया कि मृतक श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता अविवाहित था और प्रत्यर्थी सं. 1 मृतक का एकमात्र भाई है और प्रत्यर्थी सं. 1 के सिवाय अन्य कोई भाई या बहन नहीं है ।

4. आवेदक ने जो वसीयतकर्ता स्व. श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का भतीजा (नेफ्यू) और उसके सगे भाई का पुत्र है, यह कहते हुए वर्तमान आवेदन फाइल किया है कि वह प्रोबेट आवेदन का आवश्यक और उचित पक्षकार था तथापि, उसे गलत रूप से कपटपूर्वक पक्षकार नहीं बनाया गया है । यह अभिवचन किया गया है कि आवेदक उक्त वसीयतकर्ता स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता के अत्यंत निकट था । आवेदक 1976 से आवेदक की कलकत्ता में नियुक्ति तक अर्थात् 13 वर्ष से अधिक की अवधि तक वसीयतकर्ता के साथ दिल्ली में रहा था । बाद में प्रत्यर्थी सं. 1 दिल्ली चला गया और उस समय तक दिल्ली में ही रहा जब श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की मृत्यु हुई । तथापि, आवेदक और श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का करीबी रिश्ता बना रहा और श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता अक्सर आवेदक और प्रत्यर्थी सं. 1 को यह बताते थे कि वह अपनी आस्तियों को संयुक्त रूप से अपने विधिक वारिसों को बांटना चाहते हैं । अतः यह अभिवचन किया गया है कि आवेदक एक आवश्यक और उचित पक्षकार था । प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा मिथ्या कथन करते हुए उन्हें आवेदन में पक्षकार नहीं बनाया गया । अतः यह कहा गया है कि इस न्यायालय को तारीख 2 सितंबर, 2003 के निर्णय द्वारा प्रोबेट मंजूर करने के आदेश को रद्द करना चाहिए ।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

6. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने दोहराते हुए यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्रोबेट आवेदन में यह कहते हुए जानबूझकर मिथ्या कथन किया गया है कि वह श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का एकमात्र सगा भाई है । आवेदक ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **मणिभाई अमईदास पटेल और एक अन्य** बनाम **दयाभाई अमईदास**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय

---

[1] (2005) 12 एस. सी. सी. 154.

और इस न्यायालय द्वारा **उमेश कुमार पुष्करना और एक अन्य** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि आवेदक उक्त प्रोबेट आवेदन में एक आवश्यक पक्षकार बनाया जाना चाहिए था तथापि, उसे गलत रूप से तथा जानबूझकर पक्षकार नहीं बनाया गया । आवेदक ने यह भी दलील दी है कि एक कुटुम्बीय समझौता हुआ था जिसके द्वारा आवेदक को भी चितरंजन पार्क स्थित उक्त सम्पत्ति में अधिकार दिए गए थे और इसलिए आवेदक वर्तमान आवेदन में एक आवश्यक पक्षकार था ।

7. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन वर्ग 2 की प्रविष्टि II के अधीन आते हैं जबकि आवेदक हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की अनुसूची के वर्ग 2 की प्रविष्टि iv के अधीन आता है । उन्होंने यह दलील दी है कि यदि इस न्यायालय द्वारा विल को प्रोबेट नहीं भी किया जाए तो भी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम को दृष्टिगत करते हुए वह वसीयतकर्ता स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की संपदा का एकमात्र वारिस होगा और किसी भी स्थिति में वह चितरंजन पार्क स्थित संपत्ति का वारिस होगा । उन्होंने यह भी दलील दी है कि श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की वर्ष 1997 में मृत्यु हो गई थी । आवेदक को वर्ष 2003 में प्रोबेट मंजूर किया गया था । आवेदक ने वर्ष 2013 में कार्रवाई करते हुए प्रोबेट के रद्दकरण के लिए वर्तमान आवेदन फाइल किया है ।

8. मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि पक्षकारों ने गुण-दोष के आधार पर दलीलें दी हैं और साक्ष्य प्रस्तुत करने की ईप्सा नहीं की है । मेरे मतानुसार अभिवचनों की प्रकृति को दृष्टिगत करते हुए किसी भी दशा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है ।

9. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 263 और 278 इस प्रकार है :–

> **"263. न्यायोचित कारण से प्रतिसंहरण या बातिलीकरण** – प्रोबेट या प्रशासन पत्र अनुदान न्यायोचित कारणों से प्रतिसंहृत या बातिल किया जा सकेगा ।
>
> स्पष्टीकरण – न्यायोचित कारण वहां विद्यमान माना जाएगा

[1] (2015) 224 डी. एल. टी. (सी. एन.) 4.

जहां –

(क) अनुदान अभिप्राप्त करने की कार्यवाहियां सारवान् रूप में त्रुटिपूर्ण थीं ; या

(ख) अनुदान असत्य द्वारा या उस मामले के लिए किसी तात्विक बात को न्यायालय से छिपाकर कपटपूर्वक अभिप्राप्त किया गया था ; या

(ग) अनुदान, अनुदान को न्यायोचित बनाने के लिए विधि की दृष्टि से आवश्यक तथ्य के असत्य अभिकथन के माध्यम से अभिप्राप्त किया गया था यद्यपि ऐसा अभिकथन अनभिज्ञता से या अनवधानता से किया गया था ; या

(घ) परिस्थितियों के कारण अनुदान अनुपयोगी और अप्रवर्तनीय हो गया है ; या

(ङ) उस व्यक्ति ने, जिसे अनुदान किया गया था, जानबूझकर और युक्तियुक्त कारण के बिना, इस भाग के अध्याय 7 के उपबंधों के अनुसार किसी सूची या लेखा का पेश करना छोड़ दिया है या उस अध्याय के अधीन ऐसी सूची या लेखा पेश किया है, जो तात्विक रूप में असत्य है ।

278. प्रशासन पत्र के लिए अर्जी – (1) प्रशासन पत्र के लिए, अर्जीदार द्वारा पूर्वोक्त रूप में सुस्पष्टतः लिखा गया आवेदन किया जाएगा और उसमें निम्नलिखित कथन होंगे –

(क) मृतक की मृत्यु के समय और स्थान ;

(ख) मृतक का कुटुम्ब और अन्य नातेदार तथा उनके निवास स्थान ;

(ग) वह अधिकार जिसके आधार पर अर्जीदार दावा करता है ;

(घ) उन आस्तियों की रकम जिनकी अर्जीदार के हाथों में आने की संभावना है ;

(ङ) जब आवेदन जिला न्यायाधीश को किया गया है, तब यह कि मृतक का, उसकी मृत्यु के समय, न्यायाधीश की

अधिकारिता के भीतर स्थित नियत निवास स्थान था या कुछ संपत्ति थी ; और

(च) अब आवेदन किसी जिला प्रतिनिधि को किया गया है, तब यह कि मृतक का, उसकी मृत्यु के समय, ऐसे प्रतिनिधि की अधिकारिता के भीतर नियत निवास स्थान था ।

(2) जहां आवेदन किसी जिला न्यायाधीश को किया गया है और उन आस्तियों का कोई भाग, जिनकी अर्जीदार के हाथों में आने की संभावना है, किसी अन्य राज्य में स्थित है वहां अर्जी में प्रत्येक राज्य में ऐसी आस्तियों की रकम का और उन जिला न्यायाधीशों का भी कथन किया जाएगा जिनकी अधिकारिता के भीतर ऐसी आस्तियां स्थित हैं ।"

10. अतः उपर्युक्त अधिनियम की धारा 263 के अधीन किसी प्रोबेट या प्रशासन पत्र की मंजूरी को केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब यह कपटपूर्वक या मिथ्या सुझाव करके या न्यायालय से कतिपय सामग्री छुपाकर प्राप्त किया गया है या जब ऐसी मंजूरी आवश्यक तथ्यों के असत्य अभिकथनों द्वारा अभिप्राप्त की गई है । उक्त अधिनियम की धारा 278 के अधीन कोई आवेदक प्रशासन पत्रों के अनुरोध के लिए आवेदन में मृतक के कुटुंब या अन्य नातेदारों को पक्षकार बनाने के लिए आबद्ध है ।

11. मैं प्रथमत: आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों पर विचार करने के लिए अग्रसर होता हूं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मणिभाई अमईदास पटेल और एक अन्य** बनाम **दयाभाई अमईदास** (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 9 और 10 में इस प्रकर अभिनिर्धारित किया है :–

"9. इससे स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि उन पक्षकारों को पक्षकार बनाना आवश्यक है जिनका मृतक की संपदा के लिए उत्तराधिकार में अन्यथा कोई हित है । नैसर्गिक रूप से इसमें मृतक के सभी वारिसान सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा 283 जिला न्यायाधीश को ऐसे सभी व्यक्तियों को जिन्होंने मृतक की संपदा में कोई हित होने का दावा किया है, बुलाकर पक्षकार बनाने के विवाद्यक के संबंध में और प्रोबेट की मंजूरी के पूर्व कार्यवाहियां

सुनिश्चित करने के संबंध में शक्ति प्रदत्त करती है । अतः ऐसे सभी तथ्यों को जिनके आधार पर जिला न्यायाधीश से अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए अपेक्षा की गई है, उसके समक्ष ऋजुतापूर्वक रखा जाना चाहिए । वर्तमान मामले में जैसाकि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, प्रत्यर्थी ने ऐसा कोई भी प्रयास नहीं किया है ।

10. निचले न्यायालयों ने इस तथ्य की भी उपेक्षा की है कि अपीलार्थियों ने रद्दकरण के लिए अपने आवेदन में स्पष्ट रूप से यह कहा था कि अमईदास और प्रत्यर्थी के कुटुंब के सदस्यों के बीच अन्य कार्यवाहियों में विल को सफलतापूर्वक विवादित किया गया था । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी का यह प्रकथन है कि यह बात भ्रमित करने वाली है कि मंजूरी का 'किसी भी व्यक्ति' द्वारा विरोध नहीं किया गया था । मंजूरी न्यायालय से ऐसे कतिपय तथ्य छुपाकर ली गई थी जो मामले के लिए अत्यंत तात्विक थे । अपीलार्थी सुने जाने के हकदार थे और निस्संदेह जिला न्यायाधीश को यह निदेश दिया जा सकता है कि वह अधिनियम की धारा 283(1)(ग) के अधीन इच्छापत्रहीनत्व के आधार पर अमईदास के प्रत्येक वारिस को पक्षकार बनाए और यह देखे कि क्या प्रत्यर्थी द्वारा प्रोबेट की मंजूरी के लिए अपने आवेदन में सही तथ्य प्रकट किए गए थे । वर्तमान मामले में विज्ञापन गंभीर कमी को पूरा करने के लिए पूर्ण रूप से अपर्याप्त था ।"

12. अतः उपर्युक्त निर्णय के निबंधनों में उन पक्षकारों को पक्षकार बनाया जाना आवश्यक है जिनका मृतक की संपदा के लिए उत्तराधिकार में अन्यथा हित है । इसमें मृतक के सभी वारिसान सम्मिलित हैं । मामले के तथ्यों से यह उपदर्शित होता है कि कुटुंब के सदस्यों के बीच विवाद मौजूद है क्योंकि विल को विवादित किया गया है । अतः न्यायालय से यह तथ्य छुपाया गया था कि विल विवादित दस्तावेज थी ।

13. आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा **उमेश कुमार पुष्करना और एक अन्य** बनाम **राज्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले का गलत अवलंब लिया गया है । उपर्युक्त निर्णय के परिशीलन से यह उपदर्शित नहीं होता कि क्यों और किस रीति में यह निर्णय आवेदक के पक्षकथन का समर्थन करता है ।

14. निस्संदेह विवाद्यक यह है कि क्या हमारे समक्ष के आवेदक का मृतक की संपदा में उत्तराधिकारी के रूप में कोई हित है । यदि इसका

उत्तर हां है तो वह एक आवश्यक पक्षकार होगा । यह स्वीकृत तथ्य है कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा मृतक वसीयतकर्ता श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता का स्वयं को एकमात्र भाई होने का दावा करते हुए गलत और मिथ्या कथन किया गया है । तथ्यतः मामला यह है कि वह मृतक का सौतेला भाई है न कि सगा भाई । मृतक वसीयतकर्ता के सगे भाई श्री सुधांश कुमार सेन गुप्ता की मृतक की मृत्यु होने से पूर्व ही मृत्यु हो गई थी और उसने अपने पीछे अपने पुत्र अर्थात् आवेदक को छोड़ा था । आवेदन में इस तथ्य को गलत रूप से पेश किया गया है ।

15. तथापि, क्या इस महत्वपूर्ण तथ्य को छुपाना न्यायालय से यह अभिनिर्धारित करने की अपेक्षा करता है कि प्रोबेट की मंजूरी कपटपूर्ण उपाय द्वारा अभिप्राप्त की गई थी और इसलिए तारीख 2 सितंबर, 2003 के निर्णय द्वारा प्रशासन पत्र की मंजूरी को रद्द किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष यह स्वीकृत स्थिति है कि यदि प्रत्यर्थी सं. 1 कोई विल प्रस्तुत नहीं करता तो वह हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन प्रश्नगत संपत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करता । ऐसा इसलिए है कि वर्ग 2 की प्रविष्टि II के अधीन सौतेले भाई सहित भाई को, भाई के पुत्र के ऊपर अधिमानता मिलती । भाई के पुत्र का वर्ग 2 की सूची iv में उल्लेख है । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 9 के अधीन वर्ग 2 में की प्रथम प्रविष्टि को दूसरी प्रविष्टि पर वरीयता दी गई है । इसी प्रकार दूसरी प्रविष्टि को तीसरी प्रविष्टि के ऊपर अधिमान दिया गया है । आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस स्थिति को विवादित नहीं किया गया है कि यदि कतिपय कारणों से विल को त्रुटिपूर्ण या जाली अभिनिर्धारित किया जाता है तो प्रत्यर्थी सं. 1 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के निबंधनों में उक्त संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा । यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि यदि मैं यह भी अभिनिर्धारित करूं कि विल स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता द्वारा विधिमान्य रूप से और विधिक रूप से निष्पादित नहीं की गई थी तो भी प्रत्यर्थी स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की संपदा का उत्तराधिकारी होगा जब तक कि आवेदक कुटुंब के समझौते के जैसाकि दावा किया गया है, समान प्रतिकूल कोई बात साबित करने में सफल नहीं होता । मेरे मतानुसार इस मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आवदेक को एक पक्षकार के रूप में पक्षकार बनाए जाने का अधिकार था ।

16. उच्चतम न्यायालय ने **अनिल बिहारी घोष** बनाम **श्रीमती लतिका बाला दासी और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :—

"अपीलार्थी की ओर से यह भी दलील दी गई है कि अपील मंजूर की जानी चाहिए और मंजूरी अन्य किसी विचारणा के सिवाय मात्र इस आधार पर ही रद्द होनी चाहिए कि गिरीश को पक्षकर नहीं बनाया गया था । हमारे मतानुसार इस प्रतिपादना के बारे में विस्तृत रूप से कहा गया है । अधिनियम की धारा 263 न्यायालय में समुचित कारण से मंजूरी को रद्द करने या शून्य करने के लिए न्यायिक विवेक निहित करती है । स्पष्टीकरण में उन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनमें न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि 'उचित कारण' बनता है । अपीलार्थी ने इस संबंध में ऊपर उल्लिखित कारण बताया या बताए हैं जिनकी यह अपेक्षा है कि रद्द किए जाने के लिए ईप्सित मंजूरी की कार्यवाहियां 'सारतः त्रुटिपूर्ण' होनी चाहिए ।

हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए तैयार नहीं हैं कि वे (कार्यवाहियां) 'सारतः त्रुटिपूर्ण' थीं जिसका यह अर्थ है कि त्रुटि ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए जिससे कि पूर्वतर कार्यवाहियों की नियमितता और विधिमान्यता सारभूत रूप से प्रभावी हो । जहां वर्तमान कार्यवाहियों में ऐसा कोई सुझाव दिया गया हो या ऐसी कोई परिस्थिति उपदर्शित की गई हो कि यदि गिरीश को पक्षकार बनाया जाता तो वह केबियट दाखिल करने योग्य होता और पक्षकार बनाए जाने के अभाव में ये कार्यवाहियां 'सारतः त्रुटिपूर्ण' बन जातीं । यह हो सकता है कि गिरीश इच्छापत्रहीनत्व के मामले में वसीयतकर्ता की संपदा के लिए अगला उत्तरभोगी पाया जाता और इस उपधारणा पर कि चारू ने वसीयतकर्ता की हत्या की थी, गिरीश मंजूरी के रद्दकरण के लिए हकदार होता यदि वह मात्र इस आधार पर प्रोबेट की मंजूरी के पश्चात् शीघ्र समावेदन करता कि उसे पक्षकार नहीं बनाया गया था । उन व्यक्तियों को पक्षकार न बनाए जाने की कमी जो प्रोबेट कार्यवाहियों से प्रभावित होते, मंजूरी के रद्दकरण के लिए स्वतः कोई आधार बन सकती थी । तथापि, किसी मामले के साबित तथ्यों से उद्भूत अन्य विचारणाओं के होते हुए यह एक आत्यंतिक

---

[1] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 566.

अधिकार का मामला नहीं है । विधि न्यायालय में वहां मंजूरी को रद्द करने के लिए न्यायिक विवेक निहित करती है जहां न्यायालय के पास प्रथमदृष्ट्या यह विश्वास करने के लिए कारण मौजूद हैं कि यह आवश्यक था कि हितबद्ध पक्षकारों की उपस्थिति में विल नए सिरे से साबित की जाती । तथापि, वर्तमान मामले में मामले की संपूर्ण परिस्थितियों में हमारा यह समाधान नहीं हुआ है कि अधिनियम की धारा 263 के अर्थान्तर्गत उचित कारण बनता है । हम इन तथ्यों की उपेक्षा नहीं कर सकते कि चूंकि वर्ष 1921 में प्रोबेट की मंजूरी के पश्चात् लगभग 27 वर्ष की अवधि बीत चुकी है तथापि, गिरीश ने वर्ष 1933 में मंजूरी की जानकारी होने के बावजूद मंजूरी के रद्दकरण के लिए अपने जीवनकाल में कोई कार्रवाई नहीं की और ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया था कि विल जाली थी या अन्यथा अविधिमान्य थी और इसलिए विल रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी और वसीयतकर्ता की अनैसर्गिक मृत्यु के 8 वर्ष पूर्व निष्पादित की गई थी । अतः गिरीश को पक्षकार न बनाना जो मंजूरी के रद्दकरण के लिए सामान्यतया पर्याप्त होता, मंजूरी के रद्दकरण के लिए न्यायालय को न्यायोचित और पर्याप्त कारण प्रदान करने के लिए विशेष परिस्थितियां मौजूद नहीं थीं ।

22. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति द्वारा रामानंदी कौर **बनाम** कलावती कौर, ए. आई. आर. 1928 पी. सी. 2 वाले मामले के विनिश्चय का निर्देश किया है । तथापि, इस प्रतिपादना के लिए यह एक नजीर है कि जहां मंजूरी के रद्दकरण के लिए दो आधार लिए गए हों, अर्थात्, (1) उन व्यक्तियों को जिन्हें पक्षकार बनाना चाहिए था, पक्षकार नहीं बनाया गया है, और (2) विल जाली थी, यदि प्रथम आधार साबित हो जाता है तो ऐसी विल को सही साबित करने के लिए भार विरोधी पक्षकारों पर जाता है । यह मामला इस प्रतिपादना के लिए यह एक नजीर है कि ऐसे प्रत्येक मामले में जहां पक्षकार बनाने में त्रुटि की गई है वहां न्यायालय को मंजूरी को रद्द करने या शून्य करने के लिए आदेश पारित करना चाहिए । बातिलीकरण सार की विषयवस्तु है न कि मात्र औपचारिकता । न्यायालय वहां कारणों से बातिलीकरण करने से इनकार कर सकता है जहां यह साबित करने की संभावना

नहीं बताई गई है कि प्रोबेट के लिए स्वीकृत विल या तो सही नहीं थी अथवा उसका विधिमान्य रूप से निष्पादन नहीं किया गया था । तथापि, जैसाकि वर्तमान मामले में निचले अपील न्यायालय द्वारा ठीक ही उपदर्शित किया गया है कि जहां विल की विधिमान्यता की सत्यता को आक्षेपित नहीं किया गया है वहां मंजूरी के रद्दकरण के लिए कोई उपयोगी प्रयोजन पूरा नहीं होता और पक्षकार विल को साबित करने की मात्र औपचारिकता निभाते । अतः हमारे मतानुसार पक्षकार न बनाने की कमी से वर्ष 1921 में मंजूरी के परिणामस्वरूप कार्यवाहियों की नियमितता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था ।"

17. स्पष्टतया ऐसे व्यक्तियों को पक्षकार न बनाने की कमी के जो प्रोबेट कार्यवाहियों से प्रभावित होते, परिणामस्वरूप सामान्यतया रद्दकरण होता तथापि, मामले के साबित तथ्यों से उद्भूत अन्य विचारणाओं के होते हुए भी यह एक आत्यंतिक अधिकार नहीं है ।

18. मेरे मतानुसार जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, यदि मैं संलग्न विल के साथ प्रशासन पत्र की मंजूरी को अपास्त भी कर दूं, जैसाकि इस आवेदन में अनुरोध किया गया है, तो भी प्रत्यर्थी सं. 1 स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की संपदा का उत्तराधिकारी होता । इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी है जो मुझे आवेदक के हक में अनुतोष की मंजूरी के लिए आनत नहीं करता । मृतक की वर्ष 1997 में मृत्यु हो गई थी जबकि वर्तमान आवेदन वर्ष 2014 में फाइल किया गया है । अतः आवेदक ने 17 वर्ष तक स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता की संपदा के लिए किसी अधिकार का दावा नहीं किया । यह इस तथ्य के अतिरिक्त है कि उसने मृतक वसीयतकर्ता के निकट होने का दावा किया है और वसीयतकर्ता की संपदा में समान अंश होने का दावा किया है । उसने वर्ष 2014 में यह दावा किया कि स्वर्गीय श्री हिमांशु कुमार सेन गुप्ता सदैव यह कहते थे कि उनकी संपदा पक्षकारों को समान रूप से न्यागत होगी और यह एक कुटुम्बीय इंतज़ाम था । आवेदक द्वारा अपने अधिकार का कथन करते हुए और प्रोबेट आदेश के रद्दकरण की ईप्सा करने के लिए विलंबित रूप से यह आवेदन फाइल करना विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है । मैं विलंब के आधार पर भी आवेदक के हक में किसी विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए तैयार नहीं हूं ।

19. मेरे मतानुसार उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए तारीख 2 सितंबर, 2003 के प्रोबेट आदेश के रद्दकरण के लिए कोई आधार नहीं बनता है । तद्नुसार वर्तमान आवेदन खारिज किया जाता है । आवेदक कुटुम्बीय समझौते को, यदि कोई हो, विधि के अनुसार प्रवृत्त कराने हेतु कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र है ।

आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 212 **बम्बई**

तायल काटन प्रा. लिमिटेड

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

तारीख 6 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति एम. एस. पाटिल

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31) – धारा 14 और 10 [कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 446(1) और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138] – ऋणस्थगन के परिणामस्वरूप दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अन्तर्गत लम्बित कार्यवाहियों पर पड़ने वाले प्रभाव – ऋणस्थगन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को किसी दांडिक कार्यवाही को चलाए जाने के विरुद्ध किसी प्रतिषेध के लिए विनिर्दिष्ट रूप से निदेशित करने का कोई अधिकार नहीं – विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण में लम्बित कार्यवाहियों को ध्यान में रखते हुए दांडिक कार्यवाहियों को स्थगित रखे जाने का आदेश पारित करके घोर अवैधता कारित की ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची कम्पनी ने परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध 15,58,612/- रुपए की रकम के चैक के बाबत एक परिवाद संस्थित कराया जिसको प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 द्वारा उनके सिविल दायित्वों के निर्वहन में निर्गत

किया गया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अधीन प्रक्रिया जारी की । इससे व्यथित होकर प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 ने 2016 का दांडिक पुनरीक्षण संख्या 147 फाइल करते हुए प्रक्रिया जारी करने वाले आदेश को चुनौती दी । इसी दौरान प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 ने मामला संख्या सी. पी./(आई. बी. सं. 20/बीबी/2017) में दिवाला कार्यवाही आरम्भ कर दी । बैंगलूरू स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने आदेश पारित करते हुए उपरोक्त दांडिक कार्यवाही को स्थगित रखे जाने का आदेश पारित कर दिया प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 ने उपरोक्त आदेश को दृष्टि में रखते हुए दांडिक पुनरीक्षण में प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया और अनुरोध किया कि पुनरीक्षण को तब तक लम्बित/स्थगित रखा जाए जब तक कि दिवाला कार्यवाही में आगे कोई आदेश पारित नहीं कर दिया जाता । याची ने अपना प्रत्युत्तर फाइल करते हुए उस आवेदन का विरोध अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर किया कि इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा इंडोरामा सिंथेक्टिस इंडिया लिमिटेड, नागपुर बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को दृष्टि में रखते हुए और कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) में समाविष्ट समरूप उपबंध पर विचार करते हुए उस धारा में समाविष्ट शब्दों "वाद या अन्य कार्यवाही" का निर्वचन किया ताकि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन फाइल किए गए दांडिक परिवाद को इसमें सम्मिलित न किया जा सके । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने दलीलों को सुनने के पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 द्वारा फाइल किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया और निर्देशित किया कि पुनरीक्षण को दिवाला कार्यवाहियों में अग्रिम आदेश पारित होने तक लम्बित रखा जाए । याची ने इस आदेश से व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन यह रिट याचिका फाइल की । इस मामले में विनिर्धारित किए जाने के लिए एक अत्यन्त लघु प्रश्न उद्भूत हुआ है, जो यह है कि क्या किसी कार्यवाही को संस्थित किए जाने से प्रतिषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ 2006 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 में यथाउपबंधित ऋणस्थगन लागू होता है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जैसा कि संहिता की धारा 14 की उपधारा (1) के खंड (क) में देखा जा सकता है, यदि एक बार न्यायनिर्णायक प्राधिकारी निगमित देनदार के विरुद्ध विधि के किसी न्यायालय, माध्यस्थम् अधिकरण या किसी अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के निष्पादन

को सम्मिलित करते हुए वादों के संस्थित किए जाने या लम्बित वादों या कार्यवाहियों को चलाए रखे जाने को प्रतिषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ ऋणस्थगन की घोषणा कर देता है, तो प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता की दलीलों का सम्पूर्ण जोर शब्दों "कार्यवाहियों", "आदेश" और "विधि के किसी न्यायालय में" पर होता है । यह निवेदन किया गया है कि ये शब्द प्रमिततः किसी सिविल कार्यवाही के क्रियान्वयन को निर्बंधित करते हैं । ये शब्द असंदिग्ध हैं और इनमें कोई दांडिक कार्यवाही भी सम्मिलित होती है जिनमें परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अन्तर्गत आने वाली कार्यवाही और उससे उद्‌भूत दांडिक पुनरीक्षण की कार्यवाही भी सम्मिलित है । जैसा कि कानूनों के निर्वचन का सिद्धांत है कि ये शब्द अपने पूर्ववर्ती शब्दों से अर्थ प्राप्त करेंगे । इन शब्दों का निर्वचन उनके पहले प्रयुक्त शब्द "वादों" के संबंध में "उसी किस्म या प्रकार का" के आधार पर किया जाएगा । इस प्रकार से निर्वचन किए जाने पर उसमें प्रयुक्त शब्द "कार्यवाहियां" और यहां तक कि शब्दों "आदेश" और "विधि के न्यायालय में" का निर्वचन किसी ऐसी कार्यवाही के रूप में किया जाएगा जो ऐसे किसी वाद या कार्यवाही में पारित आदेशों की प्रकृति में उद्‌भूत होती है । इस तथ्य के बाद भी कि विधान-मंडल ने सहजदृश्य रूप से शब्दों "दांडिक" का प्रयोग शब्द "कार्यवाहियां" के विश्लेषण के रूप में और संज्ञा "विधि के न्यायालय" के विश्लेषण के रूप में किया, यह धारणा की जानी चाहिए कि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए इस प्रकार के विश्लेषणों का जानबूझकर लोप कर दिया चूंकि उनका आशय केवल वादों और निर्णयों और डिक्रियों के निष्पादनों या उसी प्रकृति की अन्य कार्यवाहियों को प्रतिषिद्ध करना था । इसलिए, निर्वचन के इस सिद्धांत को लागू करते हुए किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 में समाविष्ट इस उपबंध पर किसी अन्य निर्वचन को अधिरोपित कर सके, सिवाय इसके कि वह निर्वचन किसी वाद या उसी प्रकृति की किसी कार्यवाही को प्रतिषिद्ध करता हो और इसमें कोई दांडिक कार्यवाही सम्मिलित नहीं होती । यह निर्वचन इंडोरामा वाले मामले में कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) में समाविष्ट समरूप उपबंध का निर्वचन किए जाने के प्रयोजनार्थ इसी विवेचना का पालन किए जाने के द्वारा निकाले जाने योग्य परिणाम है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण भी धारा 10 के अधीन किसी कार्यवाही या आदेश में किसी

दांडिक कार्यवाही को चलाए रखे जाने के विरुद्ध विनिर्दिष्ट रूप से न तो निदेशित कर सकता है न ही प्रतिषिद्ध कर सकता है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा दांडिक पुनरीक्षण को स्थगित रखे जाने के लिए निदेशित किए जाने के द्वारा घोर अवैधता कारित की है । यह आदेश विधि की दृष्टि में मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है और अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । (पैरा 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2016] 2016 (4) महाराष्ट्र ला जर्नल 249 :
इंडोरामा सिंथेक्टिस इंडिया लिमिटेड, नागपुर बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य ।** 5

आरम्भिक (रिट) अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका संख्या 1437.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री एस. एस. पाटिल
प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से	श्री वी. एम. कगने, सहायक अभियोजन अधिकारी
प्रत्यर्थी सं. 2 से 7 की ओर से	श्री ए. एस. बरलोटा

निर्णय

प्रत्यर्थी को सूचना जारी की जाए जो तुरन्त वापस प्राप्त हो । दोनों पक्षों की सहमति से मामले को ग्रहण किए जाने के ही प्रक्रम पर अंतिम रूप से सुना गया ।

2. हमारे द्वारा विनिर्धारित किए जाने के लिए एक अत्यन्त लघु प्रश्न उद्‌भूत हुआ है, जो यह है कि क्या किसी कार्यवाही को संस्थित किए जाने से प्रतिषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 में यथाउपबंधित ऋणस्थगन दांडिक कार्यवाहियों पर भी लागू होता है ।

3. वे तथ्य जिनका उल्लेख किया जाना आवश्यक है, ये हैं कि याची कम्पनी ने परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन प्रत्यर्थी संख्या 2 और प्रत्यर्थी संख्या 3 से 7, जो इसके प्रबंध निदेशक और

निदेशक हैं, के विरुद्ध 15,58,612/- रुपए की रकम के चैक के बाबत एक परिवाद संस्थित कराया जिसको प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 द्वारा उनके सिविल दायित्वों के निर्वहन में निर्गत किया गया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अधीन प्रक्रिया जारी कर दी । इससे व्यथित होकर प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 ने 2016 का दांडिक पुनरीक्षण संख्या 147 फाइल करते हुए प्रक्रिया जारी करने वाले आदेश को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के न्यायालय में चुनौती दी ।

4. इसी दौरान प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 ने मामला संख्या सी. पी./(आई. बी. सं. 20/बीबी/2017) में दिवाला कार्यवाही आरम्भ कर दी । बैंगलूरू स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

> "यह न्यायपीठ एतद्द्वारा निगमित देनदार द्वारा इन आस्तियों में से किसी आस्ति या उस आस्ति में किसी फायदेप्रद हित को अन्तरित, भारित, अन्यसंक्रामित या निस्तारित किए जाने, 2002 के प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही को सम्मिलित करते हुए निगमित देनदार द्वारा सृजित किसी प्रतिभूत हित को मोचननिषेध, वसूल या प्रवर्तित किए जाने, संपत्ति के स्वामी या पट्टेदार, जहां वह संपत्ति निगमित देनदार के अधिभोग में है या उसके कब्जे में है, द्वारा किसी संपत्ति की वसूली को सम्मिलित करते हुए किसी निर्णय, डिक्री या विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम् पैनल या अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को प्रतिषिध करती है ।"

प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 ने उपरोक्त आदेश को दृष्टि में रखते हुए दांडिक पुनरीक्षण में प्रार्थनापत्र (प्रदर्श 20) प्रस्तुत किया और अनुरोध किया कि पुनरीक्षण को तब तक लम्बित/स्थगित रखा जाए जब तक कि दिवाला कार्यवाही में आगे कोई आदेश पारित नहीं कर दिया जाता ।

5. याची ने अपना प्रत्युत्तर (प्रदर्श 23) फाइल करते हुए उस आवेदन का विरोध अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर किया कि इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **इंडोरामा सिंथेक्टिस इंडिया लिमिटेड, नागपुर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की

---

[1] 2016 (4) महाराष्ट्र ला जर्नल 249.

खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को दृष्टि में रखते हुए और कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) में समाविष्ट समरूप उपबंध पर विचार करते हुए उस धारा में समाविष्ट शब्दों "वाद या अन्य कार्यवाही" का निर्वचन किया है ताकि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन फाइल किए गए दांडिक परिवाद को इसमें सम्मिलित न किया जा सके। विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने दलीलों को सुनने के पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 द्वारा फाइल किए गए आवेदन (प्रदर्श 20) को मंजूर कर लिया और निर्देशित किया कि पुनरीक्षण को दिवाला कार्यवाहियों में अग्रिम आदेश पारित होने तक लम्बित रखा जाए। याची ने इस आदेश से व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन यह रिट याचिका फाइल की है।

6. याची के विद्वान् अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक निवेदन किया कि संहिता की धारा 14 में समाविष्ट उपबंध किसी दांडिक कार्यवाही, जिसको उस कम्पनी के विरुद्ध अभियोजित किया जाना है जिसने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन दिवाला के लिए आवेदन किया, को विनिर्दिष्ट रूप से प्रतिषिद्ध नहीं करते। राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने इस उपबंध के मतावलम्बन में किसी भी कार्यवाही को संस्थित किए जाने या उसको चलाए रखे जाने को प्रतिषिद्ध किया है, तथापि, वह आदेश भी दांडिक कार्यवाही को चलाए रखे जाने को विनिर्दिष्ट रूप से प्रतिषिद्ध नहीं करता। **इंडोरामा** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित विनिश्चय, यद्यपि इस विनिश्चय में कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) के उपबंधों का निर्वचन किया गया है, फिर भी यह निष्कर्ष निकाले जाने के प्रयोजनार्थ उस विनिश्चय में लागू किए गए कारणों और साम्यानुमान कि यह उपबंध दांडिक कार्यवाही को चलाए रखे जाने को बाधित नहीं करते, विधि को स्पष्टतः सुस्थापित कर देते हैं और इस विनिश्चय का अनुसरण हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले में किया जा सकता है।

7. विद्वान् अधिवक्ता ने दलील दी कि यद्यपि इस विनिश्चय को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष उद्धृत किया गया था और यद्यपि विद्वान् न्यायाधीश ने उसमें की गई मताभिव्यक्तियों को आक्षेपित निर्णय में प्रत्युत्पादित भी किया है, फिर भी विद्वान् न्यायालय द्वारा इस बाबत कुछ भी नहीं कहा गया कि उस मामले में पारित विनिश्चय हमारे समक्ष उपस्थित मामले की परिस्थितियों में क्यों लागू नहीं होता।

8. विद्वान् अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि संहिता की धारा 10 के अधीन चलने वाली कार्यवाहियों में राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा पारित आदेश के अन्तर्गत स्पष्ट शब्दों में यह निर्देश नहीं दिया गया है कि किसी दांडिक कार्यवाही को भी स्थगित रखा जाए । फिर भी विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तत्परतापूर्वक यह अभिनिर्धारित किया कि यह आदेश हमारे समक्ष उपस्थित मामले में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन परिवाद को चलाए रखे जाने को प्रतिषिद्ध करता है और परिणामस्वरूप दांडिक पुनरीक्षण को भी चलाए रखे जाने को प्रतिषिद्ध करता है ।

9. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 के विद्वान् अधिवक्ता ने निवेदन किया कि **इंडोरामा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता । उस मामले में कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) को चुनौती दी गई थी जबकि हमारे समक्ष उपस्थित मामले में संहिता की धारा 14, जो इस मामले में लागू होता है, के उपबंधों को चुनौती दी गई है । यदि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन फाइल किए गए किसी परिवाद के अन्तर्गत अभियोजन को चलाए रखे जाने की अनुज्ञा प्रदान की जाती है, तो इस कार्यवाही को प्रतिषिद्ध किए जाने का आत्यंतिक प्रयोजन विफल हो जाएगा । राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने संहिता की धारा 14 के उपबंधों का अवलंब लेते हुए एक आदेश पारित भी किया है और इन परिस्थितियों में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में दांडिक पुनरीक्षण की सुनवाई को स्थगित रखे जाने में कोई त्रुटि नहीं पायी जा सकती ।

10. यह सत्य है कि **इंडोरामा** (उपरोक्त) वाले मामले में कंपनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) को चुनौती दी गई थी और इस उपधारा का निर्वचन यह अधिकथित करते हुए किया गया था कि यह धारा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन किसी कार्यवाही को फाइल किए जाने/चलाए रखे जाने को बाधित नहीं करती किन्तु इस उपधारा को हमारे समक्ष उपस्थित इस मामले में सीधे-सीधे लागू नहीं किया जा सकता चूंकि इस मामले में संहिता की धारा 14 में समाविष्ट उपबंधों को चुनौती दी गई है । तथापि, मेरी सुविचारित राय में, कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) और संहिता की धारा 14 के अधीन वर्जन को उपबंधित किए जाने के पीछे उद्देश्य समान हैं और इसलिए, यद्यपि इसको कड़ाईपूर्वक निर्णयज विधि नहीं माना जा सकता और **इंडोरामा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय हमारे समक्ष उपस्थित मामले में लागू नहीं

होता, फिर भी कंपनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) में समाविष्ट उपबंधों का निर्वचन करते हुए उसमें अधिकथित विवेचनाओं और तर्कसंगतताओं का अवलंब हमारे समक्ष उपस्थित मामले में भी लिया जा सकता है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने प्रकट रूप से मामले के इस पहलू का अनदेखा किया और बिना कोई कारण उद्धृत किए **इंडोरामा** (उपरोक्त) वाले मामले में समाविष्ट विवेचनाओं और तर्कसंगतताओं का अनुसरण करने से इनकार कर दिया ।

11. कुछ भी हो, चूंकि यह मामला संहिता की धारा 14 के निर्वचन का मामला है, मैं इस धारा की शब्दरचना का परीक्षण करूंगा, जो इस प्रकार है :–

"**14. अधिस्थगन** – (1) उपधारा (2) और उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, दिवाला प्रारम्भ की तारीख को, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी सभी को आदेश द्वारा प्रतिषिद्ध के लिए निम्नलिखित अधिस्थगन की घोषणा करेगा, अर्थात् –

(क) निगमित ऋणी के विरुद्ध वाद को संस्थित करने या वादों को जारी रखने, कार्रवाइयां जिसके अंतर्गत विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम्, पैनल या अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश का निष्पादन भी है, संस्थित करना या उसको जारी रखना ;

(ख) निगमित ऋणी से उसकी किसी आस्ति का अंतरण विल्लंगम करना, अन्य संक्रामण या व्ययन करना या किसी विधिक अधिकार या उसमें हित का कोई फायदा ;

(ग) किसी संपत्ति के संबंध में निगमित ऋणी द्वारा सृजित किसी प्रतिभूत हित के पुरोबंध, वसूली या प्रवृत्त की कोई कार्रवाई जिसके अंतर्गत वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण या पुनर्गठन तथा प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन कोई कार्रवाई भी है ;

(घ) किसी स्वामी या पट्टाधारी द्वारा किसी संपत्ति की वसूली जहां ऐसी संपत्ति निगमित ऋणी द्वारा अधिभोग में है या उसके कब्जे में है ।

(2) निगमित ऋणी को आवश्यक वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति, जैसा विनिर्दिष्ट किया जाए, को अधिस्थगन कालावधि के दौरान समाप्त या निलम्बित या बाधित नहीं किया जाएगा ।

(3) ऐसे संव्यवहारों, जो किसी वित्तीय सेक्टर के विनियामक के साथ परामर्श से केन्द्रीय सरकार द्वारा यथा अधिसूचित किया जाए, को उपधारा (1) के उपबंध लागू नहीं होंगे ।

(4) अधिस्थगन का आदेश, ऐसे आदेश की तारीख से निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के पूरा होने तक प्रभावी रहेगा :

परन्तु जहां निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया अवधि के किसी समय के दौरान यदि धारा 31 की उपधारा (2) के अधीन सम्यक् रूप से जमा समाधान योजना के अनुमोदन या धारा 33 की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन निगमित ऋणी के परिसमापन को लेनदार की समिति द्वारा समाधान कर लिया गया है, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी, यथास्थिति, ऐसे अनुमोदन की तारीख से परिसमापन आदेश के प्रभाव से अधिस्थगन, समाप्त होगा ।"

12. जैसा कि संहिता की धारा 14 की उपधारा (1) के खंड (क) में देखा जा सकता है, यदि एक बार न्यायनिर्णायक प्राधिकारी निगमित देनदार के विरुद्ध विधि के किसी न्यायालय, माध्यस्थम् अधिकरण या किसी अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के निष्पादन को सम्मिलित करते हुए वादों के संस्थित किए जाने या लम्बित वादों या कार्यवाहियों को चलाए रखे जाने को प्रतिषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ ऋण स्थगन की घोषणा कर देता है, तो प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता की दलीलों का सम्पूर्ण जोर शब्दों "कार्यवाहियों", "आदेश" और "विधि के किसी न्यायालय में" पर होता है । यह निवेदन किया गया है कि ये शब्द प्रमिततः किसी सिविल कार्यवाही के क्रियान्वयन को निर्बंधित करते हैं । ये शब्द असंदिग्ध हैं और इनमें कोई दांडिक कार्यवाही भी सम्मिलित होती है जिनमें परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अन्तर्गत आने वाली कार्यवाही और उससे उद्भूत दांडिक पुनरीक्षण की कार्यवाही भी सम्मिलित है ।

13. जैसा कि कानूनों के निर्वचन का सिद्धांत है कि ये शब्द अपने पूर्ववर्ती शब्दों से अर्थ प्राप्त करेंगे । इन शब्दों का निर्वचन उनके पहले प्रयुक्त शब्द "वादों" के संबंध में "उसी किस्म या प्रकार का" (ejusdem generis) के आधार पर किया जाएगा । इस प्रकार से निर्वचन किए जाने पर उसमें प्रयुक्त शब्द "कार्यवाहियां" और यहां तक कि शब्दों "आदेश" और "विधि के न्यायालय में" का निर्वचन किसी ऐसी कार्यवाही के रूप में किया जाएगा जो ऐसे किसी वाद या कार्यवाही में पारित आदेशों की प्रकृति

में उद्भूत होती है । इस तथ्य के बाद भी कि विधान-मंडल ने सहजदृश्य रूप से शब्दों "दांडिक" का प्रयोग शब्द "कार्यवाहियां" के विश्लेषण के रूप में और संज्ञा "विधि के न्यायालय" के विश्लेषण के रूप में किया, यह धारणा की जानी चाहिए कि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए इस प्रकार के विश्लेषणों का जानबूझकर लोप कर दिया चूंकि उनका आशय केवल वादों और निर्णयों और डिक्रियों के निष्पादनों या उसी प्रकृति की अन्य कार्यवाहियों को प्रतिषिद्ध करना था । इसलिए, निर्वचन के इस सिद्धांत को लागू करते हुए किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 में समाविष्ट इस उपबंध पर किसी अन्य निर्वचन को अधिरोपित कर सके, सिवाय इसके कि वह निर्वचन किसी वाद या उसी प्रकृति की किसी कार्यवाही को प्रतिषिद्ध करता हो और इसमें कोई दांडिक कार्यवाही सम्मिलित नहीं होती ।

14. यह निर्वचन **इंडोरामा** (उपरोक्त) वाले मामले में, कम्पनी अधिनियम की धारा 446 की उपधारा (1) में समाविष्ट समरूप उपबंध का निर्वचन किए जाने के प्रयोजनार्थ इसी विवेचना का पालन किए जाने के द्वारा निकाले जाने योग्य परिणाम है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण भी धारा 10 के अधीन किसी कार्यवाही या आदेश में किसी दांडिक कार्यवाही को चलाए रखे जाने के विरुद्ध विनिर्दिष्ट रूप से न तो निदेशित कर सकता है न ही प्रतिषिद्ध कर सकता है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा दांडिक पुनरीक्षण को स्थगित रखे जाने के लिए निदेशित किए जाने के द्वारा घोर अवैधता कारित की है । यह आदेश विधि की दृष्टि में मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है और अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है ।

15. रिट याचिका मंजूर की जाती है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाता है, तद्द्वारा विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश दांडिक पुनरीक्षण की कार्यवाही करेंगे और उसको विधि अनुसार निर्णीत करेंगे ।

16. यह आदेश उपरोक्त निबंधनों को दृष्टि में रखते हुए अंतिम किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

अवि.

अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड

तारीख 6 सितम्बर, 2018

कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति नरेश एच. पाटिल
और न्यायमूर्ति जी. एस. कुलकर्णी

संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) – धारा 126 – बैंक प्रत्याभूति का नकदीकरण – प्रश्नगत बैंक प्रत्याभूतियां बिना शर्त और अपरिवर्तनीय थीं जिनको ग्राहक के पक्ष में ठेकेदार की बाध्यताओं के निर्वहन के संबंध में जारी किया गया था – तत्पश्चात् इन बैंक प्रत्याभूतियों को संशोधित किया गया और पक्षों की सहमति से इनकी समयावधि को विस्तारित कर दिया गया – संविदा के निबंधनों के अनुसार बैंक प्रत्याभूतियों का विस्तारित अवधि के भीतर अवलंब लिया जाना अनुज्ञेय होगा ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि मूल वादी, प्रत्यर्थी संख्या-1 बेल्लामी कन्सट्रक्शन्स एण्ड इन्फ्रास्ट्रेक्चर प्राइवेट लिमिटेड ने प्रत्यर्थी संख्या 2 – बैंक आफ इंडिया, जो एकमात्र मूल प्रतिवादी है, के विरुद्ध 2013 का वाणिज्यिक वाद संख्या 65 फाइल किया जिसके द्वारा 4.80 करोड़ रुपए की रकम की डिक्री की ईप्सा की गई । वादी ने उक्त वाद में यह दलील दी कि वह 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत कम्पनी है और रियल इस्टेट के विकास और विनिर्माण क्रियाकलापों के कारबार में संलग्न है । वादी ने अभिकथित किया कि वह मुम्बई के अंधेरी (पूर्व) में चकाला स्थित भूमि सी. टी. एस. संख्या 25-ए और अंधेरी कुर्ला मार्ग पर मलगांव महाकाली क्वास मार्ग पर स्थित भूमि सी. टी. एस. संख्या 215/बी का स्वामी है । वादी द्वारा अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को सम्बोधित तारीख 8 जुलाई, 2011 के आशयपत्र, जिसको प्राप्त करने की पुष्टि अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड द्वारा की गई, के अन्तर्गत अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड के साथ मुम्बई के अंधेरी (पूर्व) में वादी लिटोलियर होटल परियोजना में ढांचागत और सारभूत भाग, के कार्यों के बाबत आपूर्ति, निर्माण, सुरक्षा और प्रवर्तन के कार्यों के लिए संविदा में कुल 42 करोड़ रुपए के प्रतिफल के बाबत प्रविष्ट होने के उनके

आशय की पुष्टि कर दी । तारीख 8 जुलाई, 2011 के आशयपत्र के अन्तर्गत यह विहित किया गया कि वादी द्वारा संविदा मूल्य का 13 प्रतिशत का संदाय मांगे जाने पर समतुल्य रकम की बैंक प्रत्याभूति के बदले में संचालन अग्रिम के रूप में किया जाएगा । अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड ने कार्यस्थल पर तारीख 22 जुलाई, 2011 को कार्य आरम्भ करना था और तारीख 22 मई, 2012 को समाप्त करना था । 2013 के वाणिज्यिक वाद संख्या 65 में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 14 और तारीख 15 फरवरी, 2018 को पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए और अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब को क्षमा किए जाने के लिए यह अपील इजाजत के साथ फाइल की गई है जिसमें 2018 की कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना संख्या 596 जारी की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – बैंक आफ इंडिया के मुख्य प्रबन्धक ने तारीख 17 जुलाई, 2012 की संसूचना द्वारा वर्तमान अपीलार्थी-अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को सूचित किया कि लाभार्थी ने तुरन्त संदाय किए जाने की मांग की गई है और चूंकि उन्होंने बैंक प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने के पूर्व अवलंब सूचना प्राप्त कर ली है, वे 48 घंटों के भीतर संदाय करने के लिए बाध्य हैं । अपीलार्थी-अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड से आग्रह किया गया था कि वे यथाशीघ्र संदाय का इन्तजाम करें । इसमें के अपीलार्थी ने उसी दिन अर्थात् तारीख 17 जुलाई, 2012 को बैंक को सूचित किया कि बैंक प्रत्याभूति के अवलंब की मांग विधि की दृष्टि में आरम्भ से ही व्यर्थ है । तत्पश्चात्, बैंक ने अगले दिन अर्थात् तारीख 18 जुलाई, 2012 को वादी को सूचित किया कि उनके द्वारा लिया गया प्रत्याभूति का अवलंब बैंक प्रत्याभूतियों के निबंधनों के सामंजस्य में नहीं है और यह संभव नहीं है कि संदाय के लिए अनुरोध को स्वीकार कर लिया जाए । न्यायालय ने बैंक प्रत्याभूतियों का परिशीलन किया और बैंक प्रत्याभूतियों और सुसंगत अभिलेखों का निर्वचन किया है । न्यायालय के विचार में यह ग्राहक के पक्ष में जारी की गई एक बिना शर्त और अपरिवर्तनीय बैंक प्रत्याभूति है जिसका निर्वहन ठेकेदार की बाध्यताओं को सम्यक् रूप से पूरा किए जाने के बाबत है । यह प्रत्याभूति गतिशील अग्रिम के रकम के संबंध में ग्राहक की क्षतिपूर्ति करती है । बैंक ने ठेकेदार का आश्रय लिए बिना संलग्न प्रपत्र पर मात्र मांग किए जाने की स्थिति में ग्राहक को संदाय करने की जिम्मेदारी ली है । यह प्रत्याभूति सतत् प्रकृति

की है और इसको ग्राहक की पूर्व लिखित सहमति के बिना प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता । इसमें यह भी अभिकथित है कि ग्राहक उसी प्रकार से कार्य करने का हकदार होगा जैसे कि बैंक मूल देनदार हो और बैंक ने अपने जमानत के अधिकारों का अधित्यजन कर दिया है । प्रत्याभूति का खंड 7 अभिकथित करता है कि यह एक बिना शर्त प्रत्याभूति है और इसको इसकी चालू अवधि के दौरान मात्र सूचना द्वारा प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता और यह प्रभावी रहेगी जब तक कि ग्राहक द्वारा बैंक प्रत्याभूति के अधीन उसकी विधिमान्यता अर्थात् तारीख 17 जनवरी, 2012 के पूर्व दावा किए जाने पर बैंक द्वारा ग्राहक को पूर्ण संदाय नहीं कर दिया जाता । इस अवधि को दो बार विस्तारित किया गया था । प्रथम बार तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक और द्वितीय बार तारीख 17 जुलाई, 2012 तक । खंड 12 अभिकथित करती है कि जब तक कि प्रत्याभूति के अन्तर्गत प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने की तारीख के 9 माह के भीतर कोई मांग या दावा नहीं किया जाता, उस प्रत्याभूति के अन्तर्गत ग्राहक के समस्त अधिकारों का समपहरण कर दिया जाएगा और बैंक अपने दायित्व से मुक्त और मोचित हो जाएगा । अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी ने विहित समयावधि के पश्चात् बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लिया है । विद्वान् काउंसेल ने अपने इस निवेदन के पक्ष में 2012 की माध्यस्थम् याचिका (एल.) संख्या 964 में तारीख 20 जुलाई, 2012 के पारित आदेश का अवलंब लिया है । उक्त आदेश के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा किए गए इस कथन को अभिलिखित किया था कि चूंकि याची (अपीलार्थी) ने बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लेने वाले पत्र की अन्तर्वस्तु का विरोध किया है, प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक के पक्ष में बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ एक नया पत्र जारी करेगा और उस स्थिति में याचिका का निस्तारण हो जाएगा । न्यायालय ने याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए इस निवेदन को स्वीकार करने के लिए आनत हैं कि प्रत्यर्थी संख्या-1 विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए पश्चात्वर्ती बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब नहीं ले सकता था । नौ माह की अवधि बैंक प्रत्याभूति के अन्तर्गत विहित आरम्भिक समयसीमा के पश्चात् व्यतीत हो गई थी । वादी को संबोधित बैंक द्वारा जारी की गई ऊपर निर्दिष्ट संसूचना स्पष्टतया अनुध्यात करती है कि इस मामले के अपीलार्थी [अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड] द्वारा किए गए

अनुरोध पर बैंक प्रत्याभूतियों को संशोधित किया गया था और विषयान्तर्गत बैंक प्रत्याभूतियों को तारीख 17 जनवरी, 2012 और तारीख 16 अप्रैल, 2012 की संसूचनाओं द्वारा विस्तारित किया गया था । बैंक द्वारा इन दोनों संसूचनाओं में विनिर्दिष्ट रूप से यह दलील दी गई है कि यदि केवल तारीख 17 अप्रैल, 2012 को या उसके पूर्व कोई लिखित दावा या मांग प्रस्तुत की जाती है या उस लिखित दावा या मांग को तारीख 17 जुलाई, 2012 तक विस्तारित किया जाता है तो बैंक प्रत्याभूत रकम के संदाय का दायी होगा । अन्य सभी नियम और शर्तें अपरिवर्तित बनी रहीं । वास्तव में बैंक प्रत्याभूतियों के अवलंब की संविदात्मक अवधि को पक्षों की सहमति द्वारा विस्तारित कर दिया गया था और अब यह अपीलार्थी के लिए अनुज्ञेय और उपयुक्त नहीं होगा कि अब वह बैंक प्रत्याभूतियों के अवलंब की समय सीमा के विवाद्यक को उठा सके । (पैरा 23, 27 और 28)

न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल के निवेदन में पर्याप्त बल पाता है कि बैंक प्रत्याभूति स्वयंमेव ही स्वतंत्र संविदा नहीं होती और प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी बैंक प्रत्याभूतियों, जो बिना शर्त थीं, का अवलंब लेने का हकदार था । बैंक प्रत्याभूतियां और सुसंगत अभिलेख इस मामले के अपीलार्थी की ओर से किए गए इस निवेदन का समर्थन नहीं करते कि यह बैंक प्रत्याभूति नहीं थी बल्कि क्षतिपूर्ति का दस्तावेज था । न्यायालय इस निवेदन को स्वीकार नहीं करता कि प्रत्यर्थी संख्या-1 ने बैंक प्रत्याभूतियों का द्वितीय बार अवलंब लिया था । बैंक द्वारा की गई संसूचनाओं में समाविष्ट स्पष्ट अनुध्यापनों को दृष्टि में रखते हुए समय सीमा को भी विस्तारित किया गया था और आरम्भिक बैंक प्रत्याभूतियों की शर्तों को भी समय के विस्तार द्वारा संशोधित किया गया था । न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब संविदा के निबंधनों और बैंक प्रत्याभूतियों के अनुसार लिया गया था । तारीख 17 जुलाई, 2012 का अवलंबित पत्र दस्तावेज संग्रह का भाग है । इसमें यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी 9 बैंक प्रत्याभूतियों, जिनका विवरण संसूचनाओं में दिया गया है, का नकदीकरण कराएगा । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बैंक प्रत्याभूतियों के निबंधनों, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या-1 के मध्य संविदात्मक संबंध का उचित रीति में अर्थान्वयन किया है और जो निष्कर्ष निकाला वह तर्कसंगत और उचित है । न्यायालय विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचार में कोई अवैधता

नहीं पाता । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया मत अधिसंभाव्य मत है और अपील के प्रक्रम पर इस मत में किसी भी प्रकार का मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं है । परिणामस्वरूप, अपील विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है । अपील के खारिज किए जाने को दृष्टि में रखते हुए 2018 के कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना (एल.) संख्या 597 भी चलने योग्य नहीं है और तद्नुसार निस्तारित की जाती है । (पैरा 29, 30, 31 और 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 9 एस. सी. सी. 720 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 4374 : **भारत संघ** बनाम **इंडसलैंड बैंक लिमिटेड ;**	15
[2013]	(2013) 9 एस. सी. सी. 261 = 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 447 : **हरदेवेन्द्र सिंह** बनाम **परमजीत सिंह ;**	15
[2010]	(2010) 7 एस. सी. सी. 417 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3109 : **मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट** बनाम **रिजेन्सी कन्वेशन सेन्टर ;**	15
[2008]	(2008) 1 एस. सी. सी. 544 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7015 : **विन्टेक इलेक्ट्रानिक्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **एच. सी. एल. इन्फोसिस्टम लिमिटेड ;**	20
[2007]	(2007) 8 एस. सी. सी. 110 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2798 : **हिमाद्रि केमिकल्स इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **कोल टैक्स रिफाइनिंग कम्पनी ;**	20
[2007]	(2007) 6 एस. सी. सी. 470 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2716 : **महात्मा गांधी सहकारी कारखाना** बनाम **नेशनल हेवी इंजीनियरिंग को-आपरेटिव लिमिटेड ;**	20

[2006]	(2006) 6 एस. सी. सी. 293 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2321 : **स्टेट बैंक आफ इंडिया** बनाम **मुला सहकारी साखर कारखाना ;**	15
[2005]	2005 (4) महाराष्ट्र ला जर्नल 629 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 385 : **मुला सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य ;**	16, 20
[1999]	(1999) 8 एस. सी. सी. 436 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3710 : **हिन्दुस्तान कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य ;**	17
[1996]	(1996) 1 एस. सी. सी. 735 = ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2367 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नेशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी ;**	20
[1988]	(1988) 1 एस. सी. सी. 174 : **यू. पी. को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड** बनाम **सिंह कन्सलटेन्टस् एण्ड इंजीनियर्स ।**	20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना सं. 596.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

आवेदकों की ओर से — सर्वश्री राजीव कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता) और साथ में मयूर खांडेपरकर, सत्यश्रीकांत वुथा, (सुश्री) स्मिती तिवारी, धीरज म्हात्रे और (सुश्री) नुपूर जालान द्वारा मैसर्स खेतान लीगल एसोसिएट्स

प्रत्यर्थियों की ओर से — सुश्री रजनी अय्यर (वरिष्ठ अधिवक्ता) और साथ में सर्वश्री वैभव पी. वाजपेयी द्वारा प्रमोद वाजपेयी और (सुश्री) संध्या नाम्विदी द्वारा मैसर्स ला फोकस

न्यायालय का निर्णय कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति नरेश एच. पाटिल ने दिया ।

का. मु. न्या. पाटिल – 2013 के वाणिज्यिक वाद संख्या 65 में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 14 और तारीख 15 फरवरी, 2018 को पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए और अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब को क्षमा किए जाने के लिए यह अपील इजाजत के साथ फाइल की गई है जिसमें 2018 की कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना संख्या 596 जारी की गई है ।

2. मूल वादी, प्रत्यर्थी संख्या-1 बेल्लामी कन्सट्रक्शन्स एण्ड इन्फ्रास्ट्रेक्चर प्राइवेट लिमिटेड ने प्रत्यर्थी संख्या-2 बैंक आफ इंडिया, जो एकमात्र मूल प्रतिवादी है, के विरुद्ध 2013 का वाणिज्यिक वाद संख्या 65 फाइल किया जिसके द्वारा 4.80 करोड़ रुपए की रकम की डिक्री की ईप्सा की गई । वादी ने उक्त वाद में यह दलील दी कि वह 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत कम्पनी है और रियल इस्टेट के विकास और विनिर्माण क्रियाकलापों के कारबार में संलग्न है । वादी ने अभिकथित किया कि वह मुम्बई के अंधेरी (पूर्व) में चकाला स्थित भूमि सी. टी. एस. संख्या 25-ए और अंधेरी कुर्ला मार्ग पर मलगांव महाकाली क्वास मार्ग पर स्थित भूमि सी. टी. एस. संख्या 215/बी का स्वामी है । इसमें के आवेदक/वादी ने अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को वादी द्वारा सम्बोधित तारीख 8 जुलाई, 2011 के आशयपत्र, जिसकी पुष्टि अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड द्वारा की गई, के अधीन 42 करोड़ रुपए के संपूर्ण संविदा मूल्य के प्रतिफलार्थ मुम्बई (पूर्व) के वादी के वाद के बितोलि पर होटल परियोजना में शेल एण्ड कोर कार्यों (शेल और कोर कार्यों से तात्पर्य किसी भवन के आधार की रूपरेखा और उसके निर्माण से है), की आपूर्ति, निर्माण, सुरक्षा और प्रवर्तन के कार्यों के लिए अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड के साथ संविदा में प्रविष्ट होने के उनके आशय की पुष्टि कर दी । तारीख 8 जुलाई, 2011 के आशयपत्र के अन्तर्गत यह विहित किया गया था कि वादी द्वारा संविदा मूल्य का 13 प्रतिशत के संदाय मांगे जाने पर समतुल्य रकम की बैंक प्रत्याभूति के बदले में संचालन अग्रिम के रूप में किया जाएगा । अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को कार्यस्थल पर तारीख 22 जुलाई, 2011 को कार्य आरम्भ करना था और तारीख 22 मई, 2012 को समाप्त करना था ।

3. अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड ने संविदा और आशयपत्र के परिणामस्वरूप 9 बैंक प्रत्याभूतियां प्रस्तुत कर दीं जो सभी तारीख 18 जुलाई, 2011 की थीं और प्रतिवादी-बैंक आफ इंडिया द्वारा वादी के पक्ष में 4.46 करोड़ रुपए की कुल रकम के बाबत जारी की गई थीं । बैंक प्रत्याभूतियों के विवरण, जैसे कि उनकी संख्या, तारीख और रकम इत्यादि वादपत्र के पैरा 5 में उल्लिखित हैं । बैंक प्रत्याभूतियों की प्रतियां वादपत्र के साथ संलग्न भी की गई हैं ।

4. वादी की दलील यह है कि उसने उक्त 9 बैंक प्रत्याभूतियों, जो सभी तारीख 18 जुलाई, 2011 को जारी की गई थीं, का अवलंब लेते हुए अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को 4.46 करोड़ रुपए के संचालन अग्रिम का संदाय कर दिया । उसने चार पत्रों जो सभी तारीख 17 जनवरी, 2012 के हैं और प्रतिवादी द्वारा वादी को संबोधित हैं, के अन्तर्गत प्रथम चार बैंक प्रत्याभूतियों की विधिमान्यता की अवधि को तारीख 17 जनवरी, 2012 से तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विस्तारित कर दी । साथ ही 9 बैंक प्रत्याभूतियों की विधिमान्यता की अवधि तारीख 17 जुलाई, 2012 तक विस्तारित कर दी । इस संबंध में जारी की गई संसूचनाओं से यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी वादी को उसके द्वारा लिखित रूप से दावा किए जाने पर या तारीख 17 जुलाई, 2012 को या उसके पूर्व मांग किए जाने पर प्रत्याभूत रकम का संदाय करने का दायी था और मूल बैंक प्रत्याभूतियों के अन्य नियम और शर्तें अपरिवर्तित रहीं ।

5. वादी की दलील है कि अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड संविदा की शर्तों पर ध्यान देने, उनका पालन करने और उनको पूर्ण करने में विफल रहा । वह कार्य जो इस संविदा की विषयवस्तु थी, को समय पर पूरा नहीं किया जा सका और इसलिए वादी ने प्रतिवादी को संबोधित तारीख 17 जुलाई, 2012 के पत्र द्वारा तारीख 18 जुलाई, 2011 की 4.46 करोड़ रुपए की कुल राशि की उपरोक्त 9 बैंक प्रत्याभूतियों के नगदीकरण का दावा किया और उस रकम की मांग की । वादी ने उक्त रकम के संपूर्ण संदाय को क्षमा किए जाने के लिए प्रतिवादी से आग्रह किया ।

6. प्रतिवादी ने तारीख 18 जुलाई, 2012 की संसूचना द्वारा वादी को सूचित किया कि प्रतिवादी द्वारा जारी 9 बैंक प्रत्याभूतियों के अन्तर्गत मांग किया जाना बैंक प्रत्याभूतियों के निबंधनों के पुष्टिकरण में नहीं था और

प्रतिवादी के लिए यह संभव नहीं था कि वह वादी के अनुरोध को स्वीकार कर पाता ।

7. अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड ने तारीख 19 जुलाई, 2012 को वादी और प्रतिवादी के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष 2012 की माध्यस्थम् याचिका (एल.) संख्या 964 फाइल की । वादी के अनुसार इस न्यायालय के समक्ष यह कथन किया गया कि चूंकि अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड ने बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब लेने वाले पत्र की अन्तर्वस्तुओं का विरोध किया है, अतः वादी अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ प्रतिवादी बैंक को एक नया पत्र जारी करेगा और इस बात को ध्यान में रखते हुए 2012 की माध्यस्थम् याचिका (एल.) संख्या 964 का निस्तारण कर दिया गया ।

8. तत्पश्चात् वादी ने 9 पत्र जारी किए जो सभी तारीख 20 जुलाई, 2012 के थे और प्रतिवादी बैंक से यह अपेक्षा करते हुए संबोधित थे कि वह उक्त रकम का संदाय करे । प्रतिवादी ने वादी को संबोधित तारीख 25 जुलाई, 2012 की संसूचना द्वारा सूचित किया कि प्रतिवादी द्वारा बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब बैंक प्रत्याभूतियों की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् लिया गया है और इसलिए प्रतिवादी उनके अन्तर्गत संदेय रकम के भुगतान के अनुरोध पर विचार कर पाने में असमर्थ है । वादी द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से तारीख 24 जुलाई, 2012 और तारीख 26 जुलाई, 2012 की संसूचनाओं द्वारा प्रतिवादी बैंक को यह अभिकथित करते हुए पुनः संसूचित किया गया कि बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब उनके निबंधनों के अनुसार अनुध्यात अवधि के भीतर लिया गया है और उन्होंने उक्त 9 बैंक प्रत्याभूतियों के खंड 12 को निर्दिष्ट किया जो अभिव्यक्त रूप से उक्त बैंक प्रत्याभूतियों के व्यतीत हो जाने की तारीख से कोई मांग या दावा किए जाने के प्रयोजनार्थ 9 माह की अवधि प्रदान करती है ।

9. तत्पश्चात् प्रतिवादी ने 2012 की माध्यस्थम् याचिका (एल.) संख्या 964 (जिसको बाद में 2012 की माध्यस्थम् याचिका संख्या 830 के रूप में संख्यांकित किया गया) में 2012 की कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना संख्या 1835 इस न्यायालय के समक्ष यह प्रार्थना करते हुए जारी की कि प्रतिवादी को माध्यस्थम् याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 2 होने के कारण वादी को 4.46 करोड़ की कुल रकम, जिसकी प्रत्याभूति उपरोक्त 9 बैंक प्रत्याभूतियों के अन्तर्गत दी गई थीं, का संदाय करने के लिए आदेशित

किया जाए । कार्यवाही आरम्भ किए जाने की उक्त सूचना को वापस ले लिए जाने के कारण वादी को यह स्वतंत्रता प्रदान करते हुए निस्तारित कर दिया गया कि वह समुचित कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है । तत्पश्चात् वादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 37 के उपबंधों के अन्तर्गत तारीख 18 जुलाई, 2011 की प्रत्याभूतियों की संविदा के आधार पर संक्षिप्त वाद फाइल किया । वादी ने उक्त संक्षिप्त वाद में निम्नलिखित अनुतोषों के लिए प्रार्थना की :–

> "(क) न्यायालय वादी को दावे के विवरण (प्रदर्श 'एल') के अनुसार प्रतिवादी को 4,80,09,150 रुपए की राशि का संदाय इस वाद को फाइल किए जाने की तारीख से संदाय या वसूली की तारीख तक 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज के साथ या ब्याज की वह दर जो माननीय न्यायालय निर्णीत करे, और वाद की लागत के साथ किए जाने के लिए आदेश एवं डिक्री पारित करे ।"

10. इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 14 और तारीख 15 फरवरी, 2018 के निर्णय और आदेश द्वारा प्रतिवादी बैंक के विरुद्ध डिक्री पारित की जो निम्नलिखित शब्दों में है :–

> "17. तद्नुसार, प्रतिवादी के विरुद्ध 4.46 करोड़ रुपए की मूल रकम की राशि की डिक्री पारित की जाती है । डिक्री पारित किए जाने की तारीख से चार माह की अवधि के लिए 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से वादकालीन अवधि और आगे का ब्याज भी देय होगा । चार माह की अवधि के पश्चात् मूल रकम पर 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज संदेय होगा । प्रतिवादी वादी को वाद की लागत का भी संदाय करेगा ।"

11. आवेदक/अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री राजीव कुमार ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन इजाजत प्रदान किए जाने की प्रार्थना की, चूंकि वर्तमान अपीलार्थी को वाद में पक्ष-प्रतिवादी नहीं बनाया गया था । उन्होंने निवेदन किया कि यदि अपीलार्थी को पक्ष बनाया गया होता, तो वह विचारण न्यायालय के समक्ष सुसंगत अभिलेख प्रस्तुत कर सकता था और वादी के दावे की प्रतिरक्षा कर सकता था । अपीलार्थी प्रतिकूल रूप से प्रभावित है चूंकि उसको वाद में प्रतिवादी पक्ष नहीं बनाया गया था । वास्तव में वह वाद का आवश्यक पक्ष था, उस स्थिति में भी जहां वादी ने बैंक प्रत्याभूतियों का

अवलंब लिए जाने का दावा किया था ।

12. आवेदक/अपीलार्थी की शिकायत की प्रकृति पर विचार करते हुए और इस बात पर भी विचार करते हुए कि हमारे द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय के संदर्भ में परस्पर विरोधी दावों के गुणागुण पर विचार किया जाना अपेक्षित है, हम यह उचित प्रतीत करते हैं कि 2018 की कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना संख्या 596 जिसके द्वारा अपील फाइल किए जाने की ईप्सा की गई और साथ ही अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब को क्षमा किए जाने की प्रार्थना मंजूर की जानी चाहिए । तद्नुसार प्रार्थना खंड (क) और (ख) के निबंधनों के अनुसार यह अनुज्ञा प्रदान की जाती है । हमने इस अपील पर सुनवाई हेतु ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही विचार आरम्भ कर दिया है ।

13. वादी के दावे के गुणागुण पर अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि यह एक स्थिरीकृत विधि है कि बैंक प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने के पहले ही उनका अवलंब लिया जाना एक पुरोभाव्य शर्त होती है । बैंक प्रत्याभूति की रचना सदैव ही इस प्रकार से की जाती है कि वह ठेकेदार और उसके नियोक्ता के मध्य मुख्य संविदा के अनुरूप हो । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में होटल के निर्माण की संविदा अपीलार्थी को प्रदान की गई थी और तद्नुसार दस्तावेज निष्पादित किए गए थे जिनको बैंक प्रत्याभूति कहा गया, जिसमें कार्य समाप्ति की अनुसूची और कार्य समापन प्रमाणपत्र को सम्मिलित करते हुए संविदात्मक बाध्यताओं के विनिर्दिष्ट संदर्भ में क्षतिपूर्ति खंड समाविष्ट थे । यह ठेकेदार की बाध्यता थी कि वह दस्तावेजों की सही प्रकृति का परीक्षण करता । विद्वान् काउंसेल के अनुसार तथाकथित बैंक प्रत्याभूतियां क्षतिपूर्ति की संविदाएं हैं । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने क्षतिपूर्ति के खंड का और ठेकेदार की बाध्यताओं के अनुपालन की अपेक्षा का अनदेखा किया है । विद्वान् एकल न्यायाधीश इस तथ्य का मूल्यांकन कर पाने में विफल रहा कि सत्य और सही निर्वचन किए जाने पर विषयांतर्गत बैंक प्रत्याभूतियां वास्तव में क्षतिपूर्तियां हैं और न कि बिना शर्त बैंक प्रत्याभूतियां । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा .... के सिद्धांत का संदर्भ दिया जाना त्रुटिपूर्ण है । बैंक प्रत्याभूति, विशेष रूप से उसका खंड 12, के निर्वचन में कोई संदिग्धता नहीं है । आगे यह निवेदन किया गया कि बैंक प्रत्याभूतियों के खंड 1 और 7 यह स्पष्ट करते हैं कि बैंक प्रत्याभूति के अन्तर्गत मांग तारीख 17 जनवरी, 2012 को या उससे

पूर्व की जानी चाहिए थी । उस तारीख को प्रत्याभूतियों को दो पश्चात्वर्ती संशोधनों द्वारा विस्तारित किया गया था । बैंक प्रत्याभूतियों के अन्तर्गत अपनी प्रतिबद्धताओं का निर्वाह किए जाने के प्रयोजनार्थ बैंक का दायित्व तारीख 17 जुलाई, 2012 को समाप्त हो जाएगा और उस तारीख के पश्चात् किसी भी मांग या दावे पर विचार नहीं किया जाएगा । बैंक प्रत्याभूतियां तारीख 17 जुलाई, 2012 को समाप्त हो गईं । विद्वान् काउंसेल ने बैंक प्रत्याभूतियों के खंड 12 के संबंध में निवेदन किया कि यह खंड अवलंब की अवधि को विस्तारित नहीं करता । किसी खंड का आधारस्तंभ जैसे कि बैंक प्रत्याभूतियों का खंड 12, 1872 के संविदा अधिनियम की धारा 28 में उपस्थित है । बैंक प्रत्याभूतियों के खंड 12 को विधि के किसी न्यायालय के समक्ष वाद के रूप में न्यायिक रूप से कोई दावा प्रस्तुत किए जाने के पूर्व बैंक प्रत्याभूतियों के अधीन उत्पन्न होने वाले अधिकारों के प्रवर्तन के संबंध में पढ़ा जाना चाहिए, न कि स्वयमेव बैंक के ही समक्ष अधिकारों के प्रकथन के रूप में ।

14. विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि किसी आवश्यक पक्ष के असंयोजन पर न्यायालय के समक्ष धारा 9 के अन्तर्गत आवेदन प्रस्तुत किया गया । न्यायालय इस बात के प्रति जागरूक था कि वर्तमान अपीलार्थी द्वारा मुम्बई के सिटी सिविल न्यायालय में वाद फाइल किया गया है । इस भाव में अपीलार्थी मामले में एक आवश्यक पक्ष था । बैंक प्रत्याभूतियां मुख्य संविदा को संदर्भित किए बिना नहीं समझी जा सकतीं । अपीलार्थी के असंयोजन के परिणामस्वरूप विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष कोई अभिवचन नहीं था और प्रत्यर्थी संख्या 1 उसका अनुचित लाभ नहीं ले सकता । विद्वान् काउंसेल ने लम्बित माध्यस्थम् कार्यवाहियों को भी निर्दिष्ट किया जिनमें 4.46 करोड़ रुपए की रकम का दावा किया गया । उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी की अनुपस्थिति में कोई प्रभावी डिक्री पारित नहीं की जा सकती थी ।

15. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने अपने निवेदनों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया :–

(क) **स्टेट बैंक आफ इंडिया** बनाम **मुला सहकारी साखर कारखाना**[1]

(ख) **मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट** बनाम **रिजेन्सी कन्वेशन सेन्टर**[2]

---

[1] (2006) 6 एस. सी. सी. 293 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2321.

[2] (2010) 7 एस. सी. सी. 417 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3109.

(ग) **भारत संघ** बनाम **इंडसलैंड बैंक लिमिटेड**[1]

(घ) **हरदेवेन्द्र सिंह** बनाम **परमजीत सिंह**[2]

(क) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य** बनाम **मुला सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 23, 24, 43 और 45 में जो मताभिव्यक्ति की, वह निम्नलिखित है :–

"(23) प्रश्नगत दस्तावेज एक वाणिज्यिक दस्तावेज है । स्वयमेव उच्च न्यायालय ने कहा है कि अभिलेख को देखने से ही यह प्रतीत होता है कि यह एक क्षतिपूर्ति की संविदा है । किसी दस्तावेज के अर्थान्वयन के लिए अभिभावी परिस्थितियां केवल तब सुसंगत होती हैं यदि उनमें कोई संदिग्धार्थ विद्यमान हो, अन्यथा नहीं ।

(24) हमारे विचार में उक्त दस्तावेज क्षतिपूर्ति का दस्तावेज गठित करता है, न कि प्रत्याभूति का दस्तावेज, जैसा कि तथ्यों से स्पष्ट है कि इसी कारणवश अपीलार्थी को समस्त हानियों, दावों, नुकसानों, कार्यवाहियों और लागतों, जिनको सहकारी सोसाइटी द्वारा बर्दाश्त किया जाना था, के संबंध में क्षतिपूर्ति करनी थी । इस दस्तावेज में बैंक द्वारा निष्पादित कराई गई बैंक प्रत्याभूति में पाए गए प्रायिक शब्द समाविष्ट नहीं होते, उदाहरणस्वरूप 'असंदिग्ध शर्त', 'सहकारी सोसाइटी बिना किसी विलम्ब या आपत्ति के नुकसान का दावा करने की हकदार है' या प्रत्याभूति 'बिना शर्त और आत्यंतिक' थी, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया ।

(43) तथापि, इस मामले में, हमारे मस्तिष्क में ऐसा कोई संदेह नहीं है कि प्रश्नगत दस्तावेज क्षतिपूर्ति की संविदा गठित करता है, न कि कोई आत्यांतिक या बिना शर्त बैंक प्रत्याभूति । अतः उच्च न्यायालय ने उसका अर्थान्वयन बिना शर्त और आत्यंतिक बैंक प्रत्याभूति के रूप में करके त्रुटि कारित की ।

(44) ....

(45) पूर्वोक्त कारणोंवश आक्षेपित आदेश, जिसको तद्नुसार अपास्त कर दिया गया है, को मान्य नहीं ठहराया जा सकता ।

[1] (2016) 9 एस. सी. सी. 720 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 4374.

[2] (2013) 9 एस. सी. सी. 261 = 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 447.

विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को पुनः स्थापित किया जाता है । अपील को लागत सहित मंजूर किया जाता है । काउंसेल की फीस पांच हजार रुपए निर्धारित की जाती है ।"

(ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट** बनाम **रिजेन्सी कन्वेशन सेन्टर एण्ड होटल प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 18 में जो मताभिव्यक्ति की वह निम्नलिखित है :–

"18. **कस्तूरी** वाले मामले (ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2813) में इस न्यायालय ने इस स्थिति को दोहराया कि विनिर्दिष्ट पालन के किसी वाद में केवल आवश्यक पक्ष और उचित पक्ष ही पक्षों के रूप में संयोजित किए जाने की ईप्सा कर सकता है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आवश्यक पक्ष वे व्यक्ति होते हैं जिनकी अनुपस्थिति में कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती या वे व्यक्ति होते हैं जिनके विरुद्ध किसी कार्यवाही में अन्तर्वलित किसी विवाद के संबंध में किसी अनुतोष को प्राप्त करने का अधिकार उपलब्ध होता है; और यह कि उचित पक्ष वे व्यक्ति होते हैं जिनकी किसी न्यायालय के समक्ष उपस्थिति न्यायालय को किसी वाद में अन्तर्वलित समस्त प्रश्नों को प्रभावी और सम्पूर्ण रूप से न्यायनिर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ समर्थ बनाने के लिए आवश्यक होती है, यद्यपि उस व्यक्ति द्वारा वाद में किसी अनुतोष के लिए दावा न किया गया हो ।"

(ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **इंडसलैंड बैंक और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 28 और 30 में जो मताभिव्यक्ति की वह निम्नलिखित है :–

"(28) पूर्वोक्त खंडों को पढ़े जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी खंड उस समय अवधि को सीमित करने के लिए आशयित नहीं है जिसके भीतर अधिकारों का प्रवर्तन किया जाना है । अन्य शब्दों में कोई भी खंड उस समयसीमा की अवधि में कटौती किए जाने के लिए आशयित नहीं है जिसके भीतर बैंक प्रत्याभूति को प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई वाद फाइल किया जा सकता है । इस स्थिति में यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय द्वारा फूड कार्पोरेशन आफ इंडिया **बनाम** न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

(ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1889) वाले मामले में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होगा ।

(30) एक अन्य मामले में सहमति व्यक्त करते हुए न्यायमूर्ति आर. एन. सहाय ने इस निर्णय के पैराग्राफ 3 में उल्लिखित निर्णयज विधि का परिशीलन करने के पश्चात् एक अत्यन्त अनुबोधक मताभिव्यक्ति की । उन्होंने कहा कि जहां वाद समयसीमा के भीतर फाइल किया गया है और वह किसी पुरोभाव्य शर्त पर निर्भर है, तो वह पुरोभाव्य शर्त उस समयसीमा की अवधि में कटौती नहीं कर सकती जिसके भीतर किसी वाद को फाइल किया जा सकता है और वह वाद विधिमान्य होगा और धारा 28 द्वारा प्रभावित नहीं होगा । विद्वान् न्यायाधीश ने फूड कार्पोरेशन आफ इंडिया वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 8 में यह मताभिव्यक्ति की –

'इससे समयसीमा की अवधि में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई कटौती नहीं होती और न ही यह उपबंध किसी भी प्रकार से यह उपबंधित करता है कि निगम छह माह के व्यतीत हो जाने के पश्चात् वाद को फाइल करने से विवर्जित हो जाएगा । वाद फाइल किए जाने के लिए पुरोभाव्य शर्त के रूप में अधिक से अधिक यह अर्थान्वयन किया जा सकता है कि अपीलार्थी को इस अधिकार का प्रयोग पक्षों के मध्य सहमत अवधि के भीतर करना चाहिए था । इस अधिकार का प्रवर्तन करार के अन्तर्गत किया गया था जब सूचना जारी की गई थी और कम्पनी से अपेक्षा की गई थी कि वह रकम का संदाय करे । अधिकार का दावा एक बात है और विधि के न्यायालय में उसका प्रवर्तन अन्य बात है । यह मात्र अधिकार के दावे से संबंधित है । इसलिए अधिकार का दावा करार द्वारा शासित होता है और यह अपेक्षित भी है कि संबद्ध पक्ष अन्य पक्ष को एक विशिष्ट समयावधि के भीतर अधिकार का दावा किए जाने के द्वारा सूचित करे, जैसा कि करार में उपबंधित है जिसके द्वारा अन्य पक्ष को न केवल मांग का अनुपालन किए जाने के प्रयोजनार्थ सफल बनाना है बल्कि उसको इस बाबत सचेत भी करना है ताकि यदि वह उस मांग का अनुपालन नहीं करता तो उसको विधि के न्यायालय में कार्यवाहियों का सामना करना पड़ेगा । चूंकि स्वीकृत रूप से निगम ने संविदा की समाप्ति से छह माह

की अवधि व्यतीत हो जाने के पूर्व सूचना जारी नहीं की थी, अतः यह पवित्र बीमा खंड के अनुसार था और इसलिए अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया वाद समयसीमा के भीतर था ।'

(घ) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **हरदेवेन्द्र सिंह** बनाम **परमजीत सिंह और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में पैरा 17 में जो मताभिव्यक्ति की वह निम्नलिखित है :–

'(17) वर्तमान में यह उल्लेख किया जाना पर्याप्त होगा कि संहिता की धारा 96 और 100 किसी भी मूल डिक्री या किसी अपील में पारित डिक्री, दोनों के विरुद्ध अपील फाइल किए जाने के लिए अलग-अलग उपबंधित करती है । पूर्वोक्त उपबंध ऐसे व्यक्तियों की कोटियों के बारे में उल्लेख नहीं करते जो अपील फाइल कर सकते हैं । यदि कोई व्यक्ति किसी निर्णय और डिक्री से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है, तो यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि वह अपील फाइल कर सकता है । इस संदर्भ में जतन कुमार गोलचा **बनाम** गोलचा प्रोपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड (ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 374, पृ. 375-376) वाले मामले के एक लेखांश को उद्धृत किया जाना लाभदायक होगा ।

'3. .... यह सुस्थापित है कि कोई व्यक्ति, जो किसी वाद का पक्ष नहीं है, सक्षम न्यायालय की इजाजत के साथ अपील फाइल कर सकता है और इस प्रकार की इजाजत प्रदान की जानी चाहिए यदि वह निर्णय द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित है ।'''

16. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री रजनी अय्यर ने अपीलार्थी को अपील फाइल किए जाने के बाबत इजाजत प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन को मंजूर किए जाने का विरोध किया । विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों के अनुसार चूंकि बैंक प्रत्याभूति स्वयमेव ही वादी और प्रतिवादी बैंक के मध्य एक स्वतंत्र संविदा है, उपस्थित अपीलार्थी वाद का आवश्यक और उचित पक्ष नहीं है । अपील डिक्री के अधीन रकम की वसूली को रोके जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की गई है । अपीलार्थी अपूर्णनीय क्षति या कपट या विशेष प्रकार की साम्या का मामला प्रस्तुत कर पाने में विफल रहा है ।

विद्वान् काउंसेल के अनुसार दावा प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न समयसीमाओं के साथ बैंक प्रत्याभूतियों में जो खंड उपबंधित किए गए हैं, वे निम्नलिखित हैं :–

"(क) खंड 1 – तारीख 17 जुलाई, 2012 (विस्तार की अवधि को सम्मिलित करते हुए संविदा की अवधि, यदि कोई हो या प्रदान किए गए अग्रिम की संपूर्ण वसूली, जो भी बाद में हो) ।

(ख) खंड 2 – जब तक कि ठेकेदार ने माल को प्रदान किए जाने के कार्यक्रम का पालन किया हो । यह भी कि उक्त खंड के अधीन प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रत्याभूति के अधीन दावा करने का अपरिवर्तनीय और बिना शर्त अधिकार प्राप्त है और उस अधिकार को अपने विचार के अनुसार विस्तारित करने का अधिकार प्राप्त है ।

(ग) खंड 7 – तारीख 17 जुलाई, 2012 को या उसके पूर्व ।

(घ) खंड 11 – जब तक कि अप्रत्यक्ष समाप्ति प्रमाणपत्र जारी न किया गया हो ।

(ङ) खंड 12 – प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने की तारीख से 9 माह की अवधि के भीतर ।"

यद्यपि बैंक प्रत्याभूतियों में एक प्रपत्र को निर्दिष्ट किया गया है, किन्तु हमारे समक्ष कोई भी प्रपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया । इस प्रयोजनार्थ समय प्रदान किया गया और इसके विरुद्ध अपीलार्थी द्वारा कोई एतराज भी नहीं किया गया । पक्ष के रूप में अपीलार्थी के असंयोजन के विवाद्यक पर **मुला सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया । विद्वान् काउंसेल के अनुसार उक्त निर्णय का विनिश्चयानुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होता है ।

17. अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादी-बैंक के विरुद्ध मुम्बई के सिटी सिविल न्यायालय में एक वाद फाइल किया गया था, जिसमें बैंक प्रत्याभूतियों का अवंलब लिए जाने के विरुद्ध व्यादेश की ईप्सा की गई थी और इस वाद में अपीलार्थी का पक्षकथन यह था कि वर्तमान प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी वाद का आवश्यक पक्ष नहीं है । वर्तमान मामले में विरचित किया गया कोई भी विवाद्यक इस बाबत नहीं है कि अपीलार्थी मामले का आवश्यक पक्ष है ।

---

[1] 2005 (4) महाराष्ट्र ला जर्नल 629.

विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बैंक प्रत्याभूतियों के खंडों का निर्वचन उचित प्रकार से किया है और अभिलेख पर उपस्थित सुसंगत दस्तावेजों पर विचार किया है । उनके द्वारा किया गया निर्वचन ही संभव निर्वचन है । इस वाद में यह निवेदन किया गया कि अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया वाद अर्थात् 2012 का वाद संख्या 2165 विवाद्यक विरचित किए जाने के प्रयोजनार्थ वर्ष 2012 से लम्बित है । बैंक और अपीलार्थी के आचरण से यह स्पष्ट होता है कि उनको न्यायालय के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों की जानकारी थी । यह निवेदन किया गया कि **हिन्दुस्तान कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में पारित निर्णय का अवलंब लिया गया है, किन्तु वह मामला इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता चूंकि वह मामला सशर्त प्रत्याभूति पर आधारित है जबकि हमारे समक्ष उपस्थित मामले में बैंक प्रत्याभूतियां बिना शर्त प्रकृति की हैं ।

18. जहां तक बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब लिए जाने का संबंध है, यह निवेदन किया गया कि संभव समयसीमा पर विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के पैरा 7 से 13 में विनिर्दिष्ट रूप से विचार किया गया । बैंक प्रत्याभूतियों का न्यायतः अवलंब अनुध्यात समयावधि के पहले लिया गया था । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध फाइल की गई माध्यस्थम् कार्यवाही में 42 करोड़ रुपए की रकम, जिसमें से 33 करोड़ रुपए की रकम संविदा के अन्तर्गत किए जाने वाले लम्बित कार्य से संबंधित है, का दावा किया है । जो विवादित कार्य किया गया है, उसमें से 9 करोड़ रुपए की शेष रकम में से 4.5 करोड़ रुपए की रकम बैंक प्रत्याभूतियों से संबंधित है जिसका प्रयोग अब अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध मुकदमेबाजी की कार्यवाही को आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जा रहा है ।

19. प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि बैंक प्रत्याभूतियां, जो मामले की विषयवस्तु हैं, क्षतिपूर्ति विलेख नहीं है । उक्त विवाद्यक को सर्वप्रथम इस न्यायालय के समक्ष **मुला सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले को उद्धृत किए जाने के पश्चात् इस मामले में बहस के दौरान उठाया गया था । बैंक प्रत्याभूतियों को सभी तीनों पक्षों के अनुदेशों के अन्तर्गत तैयार किया गया था । बैंक प्रत्याभूति के खंड

[1] (1999) 8 एस. सी. सी. 436 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3710.

6 में स्पष्टतः उल्लिखित है कि इस बैंक प्रत्याभूति के अन्तर्गत मुवक्किल उसी प्रकार से कार्य करने का हकदार होगा जैसे कि बैंक मूल देनदार हो और बैंक एतद्द्वारा जमानतदार के अपने समस्त या किसी भी अधिकार को अधित्यजित करता है । बैंक प्रत्याभूतियों का खंड 12 पढ़े जाने पर यह दर्शित होता है कि बैंक प्रत्याभूतियों के व्यतीत हो जाने की तारीख से 9 माह की अवधि यह प्रकथन किए जाने/बैंक प्रत्याभूतियों के अन्तर्गत दावे का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ उपबंधित की गई हैं । किसी बिना शर्त बैंक प्रत्याभूति में मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । उस स्थिति में कोई व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता यदि अपीलार्थी को कोई अपूर्णनीय क्षति होने या उसके विरुद्ध किसी असुधार्य अन्याय के होने की संभाव्यता न हो । अपीलार्थी को कपट या विशेष साम्या का मामला साबित करना है जिसमें अपीलार्थी विफल हो गया है । यह निवेदन किया गया कि कोई व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता यदि कोई अन्य प्रभावी अनुतोष उपलब्ध हो । बैंक के वायदे का आदर न्यायालयों द्वारा किसी मध्यक्षेप से मुक्त रहते हुए किया जाना चाहिए । बैंक प्रत्याभूति साधारणतया एक संविदा होती है । इसलिए, विद्वान् काउंसेल ने अपील में कार्यवाही आरम्भ किए जाने की इजाजत की सूचना को खारिज किए जाने की प्रार्थना की और साथ ही मुख्य अपील को भी खारिज किए जाने की प्रार्थना की ।

20. प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया :–

(क) **विन्टेक इलेक्ट्रानिक्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **एच. सी. एल. इन्फोसिस्टम लिमिटेड**[1]

(ख) **मुला सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य**[2]

(ग) **यू. पी. को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड** बनाम **सिंह कन्सलटेन्टस् एण्ड इंजीनियर्स**[3]

(घ) **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नेशनल कन्सट्रक्शन कम्पनी**[4]

---

[1] (2008) 1 एस. सी. सी. 544 = 2007 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7015.
[2] (2005) 4 महाराष्ट्र ला जर्नल 629 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 385.
[3] (1988) 1 एस. सी. सी. 174.
[4] (1996) 1 एस. सी. सी. 735 = ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2367.

(ङ) **हिमाद्रि केमिकल्स इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **कोल टैक्स रिफाइनिंग कम्पनी**[1]

(च) **महात्मा गांधी सहकारी कारखाना** बनाम **नेशनल हेवी इंजीनियरिंग को-आपरेटिव लिमिटेड**[2]

(क) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **विन्टेक इलेक्ट्रानिक्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **एच. सी. एल. इन्फोसिस्टम लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

"27. क्या बैंक प्रत्याभूति के नकदीरण से कोई 'असुधार्य क्षति' या 'असुधार्य अन्याय' कारित होगा । अपीलार्थी द्वारा अपने पक्ष में किसी 'विशेष साम्या' का कोई अभिकथन नहीं किया गया है । जहां तक 'असुधार्य अन्याय' के अभिकथन का प्रश्न है, अपीलार्थी ने अपनी याचिका में मात्र यह अभिकथन किया है –

'क्या प्रत्यर्थी को अपने षड्यंत्र को कार्यान्वित करने में सफल होना चाहिए, इससे न केवल कपट कारित होगा, बल्कि आवेदक को असुधार्य अन्याय भी कारित होगा और माध्यस्थम् निरर्थक हो जाएगा किन्तु इससे प्रत्यर्थी को आवेदक पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए अपनी ही गलती का अनुचित लाभ मिलेगा ।'"

(ख) **मुला सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने पैरा 34 और 35 में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

'34. हम प्रत्यर्थी बैंक द्वारा किए गए निवेदनों से संतुष्ट हैं जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा भी अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रश्नगत दस्तावेज क्षतिपूर्ति की संविदा की प्रकृति में था, न कि प्रत्याभूति की संविदा की प्रकृति में । प्रश्नगत संविदा की सुस्पष्ट स्थिति को देखते हुए और जैसा कि रकम को पहले ही अभिनिर्धारित कर दिया गया है और पक्षों द्वारा निश्चित कर दिया गया है, जहां तक दायित्व के दावे का संबंध है, 34 लाख रुपए की सीमा तक हमारा

---

[1] (2007) 8 एस. सी. सी. 110 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2798.

[2] (2007) 6 एस. सी. सी. 470 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2716.

मत है कि किसी विवाद या टकराव के निपटारे का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता जहां तक अपीलार्थी पेंटागन के मध्य दावे का संबंध है । यदि एक बार प्रश्नगत बैंक प्रत्याभूति का अवलंब, विहित अवधि के भीतर नियमों और शर्तों के अनुसार ले लिया गया था, तो प्रत्यर्थियों का इस प्रक्रम पर उक्त विवाद, यदि कोई रहा हो, से कोई संबंध नहीं था । प्रत्यर्थियों के पास कोई विकल्प नहीं था सिवाय इसके कि वे इसका सम्मान करते । प्रश्नगत दस्तावेज क्षतिपूर्ति की संविदा नहीं है और उपरोक्त तर्कणा को ध्यान में रखते हुए यह बैंक प्रत्याभूति है और इसलिए इस बात का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता कि अपीलार्थियों को किसी दावा को फाइल करने के पूर्व वास्तविक हानि को साबित करना चाहिए । इसलिए वर्तमान वाद को क्षतिपूर्ति की संविदा पर आधारित वाद नहीं माना जा सकता । यह बैंक प्रत्याभूति के प्रवर्तन के लिए फाइल किया गया वाद है । संविदा अधिनियम की धारा 126 के उपबंधों सपठित अन्य उपबंधों से यह स्पष्ट है कि शब्द 'दायित्व' और 'विलेख' , जैसा कि धारा में निर्दिष्ट किया गया है, का अर्थ है और उसमें सम्मिलित है वर्तमान विलेख या दायित्व या भविष्यवर्ती विलेख या दायित्व । वर्तमान मामले में वायदा और बाध्यता के तत्व की विधिमान्यता है । चूंकि मूल देनदार अपने दायित्वों को पूर्ण कर पाने में विफल रहा, अतः जमानतदार-प्रत्यर्थी बैंक इस बाध्यता के अधीन है कि वे बैंक प्रत्याभूति का आदर करें । बैंक प्रत्याभूति का आत्यंतिक उद्देश्य विफल हो जाएगा यदि अपीलार्थी-लेनदार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह भविष्य में उद्भूत होने वाली रकम के निपटारे या मुख्य देनदार मैसर्स पेंटागन के विरुद्ध नुकसान के निपटारे के लिए प्रतीक्षा करे । इस प्रकार की वाणिज्यिक संविदाओं और दस्तावेजों की प्रकृति और उनकी आवश्यकता का संबद्ध पक्षों द्वारा आधार किए जाने की आवश्यकता है । यह किसी कपट या असुधार्य अन्याय या असुधार्य हानि का मामला नहीं है । प्रत्यर्थियों के दायित्व का किसी भी माध्यम से मोचन नहीं हुआ है । अधिक से अधिक प्रश्नगत बैंक प्रत्याभूति को प्रदर्शन प्रत्याभूति कहा जा सकता है, किन्तु इसको किसी भी भाव में क्षतिपूर्ति की संविदा प्रतीत नहीं किया जा सकता ।

35. विवाद्यक संख्या 3 और 4 : उपरोक्त बातों को ध्यान में

रखते हुए हमारा यह मत है कि विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि मैसर्स पेंटागन एक आवश्यक पक्ष था । जैसी कि मताभिव्यक्ति ऊपर की गई है, यदि प्रश्नगत दस्तावेज एक बैंक प्रत्याभूति है तो ऐसे वाद में मूल देनदार आवश्यक पक्ष नहीं होगा । प्रत्यर्थी बैंक उक्त दस्तावेज का आदर किए जाने के प्रयोजनार्थ बैंक प्रत्याभूति के नियमों और शर्तों और अपीलार्थियों को संदाय किए जाने के लिए बाध्य है, जैसा कि दावा किया गया है । उपरोक्त तर्कणा को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि मूल देनदार मैसर्स पेंटागन आवश्यक पक्ष नहीं था । दस्तावेज प्रदर्श-46 क्षतिपूर्ति की संविदा की भांति स्वतंत्र संविदा नहीं है । यह त्रिपक्षीय संविदा है । चूंकि अपीलार्थी को लाभार्थी मैसर्स पेंटागन द्वारा कारित नुकसानों को साबित करने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए, वह आवश्यक पक्ष नहीं है यद्यपि तारीख 25 सितम्बर, 1983 का मुख्य करार मैसर्स पेंटागन और अपीलार्थी के मध्य था । दस्तावेज की स्पष्ट शर्तों को ध्यान में रखते हुए, आपूर्तिकर्ता मैसर्स पेंटागन का दायित्व कारित किए गए व्यतिक्रम और बैंक प्रत्याभूति के अवलंब को दृष्टि में रखते हुए किसी हानि को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी अन्य साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है । 34 लाख रुपए की बड़ी रकम, जिसका दावा किया गया है, को पक्षों द्वारा वहन किया गया है । इसलिए, विद्वान् न्यायाधीश पक्षों के असंयोजन के कारण वाद को खारिज करने में न्यायनुमत नहीं था ।'

(ग) माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **यू. पी. को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड** बनाम **सिंह कन्सलटेन्टस् एण्ड इंजीनियर्स** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 43 और 51 में जो मताभिव्यक्ति की गई, वह निम्नलिखित है :–

"43. प्रत्यर्थी द्वारा दी गई दलील आकर्षक प्रतीत होती है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह दलील मामले की आधारी प्रकृति का अनदेखा करते हुए दी गई है । मामले की आधारी प्रकृति यू. पी. को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड को दी गई प्रत्याभूतियों के अधीन बैंक द्वारा धारण की गई बाध्यताओं से संबंधित है । यदि विधि के अन्तर्गत बैंक को मैसर्स सिंह कन्सलटेन्टस् एण्ड इंजीनियर्स (प्रा.) लिमिटेड द्वारा रोका नहीं जाता, तो यू. पी. को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड को भी प्रत्याभूतियों का अवलंब लेने से निषिद्ध नहीं किया जा सकता । इसलिए, बैंक को पक्ष न बनाए जाने के द्वारा वाद को

विरचित किए जाने से विधि की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता । इसी प्रकार से यह दलील दिया जाना निरर्थक नहीं होगा कि न्यायालय व्यादेश प्रदान करने में न्यायसंगत था चूंकि न्यायालय ने मैसर्स सिंह कन्सलटेन्टस् एण्ड इंजीनियर्स (प्रा.) लिमिटेड के पक्ष में प्रथमदृष्ट्या मामला पाया था । किसी प्रथमदृष्ट्या मामले या सुविधा के संतुलन का परीक्षण किए जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता यदि न्यायालय बैंक द्वारा प्रश्नगत प्रत्याभूति के मामले में किए गए बिना शर्त वायदे में मध्यक्षेप नहीं करता ।

51. यह सत्य है कि इस न्यायालय द्वारा दिए गए दोनों ही विनिश्चय अपरिवर्तनीय उधारपत्र के माध्यम से विनिर्दिष्ट वस्तुओं या माल विक्रय के संव्यवहारों पर विचार करते हैं । किन्तु आधुनिक वाणिज्यिक संव्यवहारों में संविदा में सम्मिलित होने वाले पक्षों द्वारा संविदा के निर्वहन को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ विभिन्न प्रकार की युक्तियों का प्रयोग किया जाता है । परम्परागत उधारपत्र को नया अर्थ प्रदान किया गया है । कारबार के क्षेत्रों में उधार के उपलब्ध पत्रों का प्रयोग किया जाता है । इसके बाद निर्वहन बंधपत्र और प्रत्याभूति बंधपत्र भी वे युक्तियां हैं जिनका संव्यवहारों में तेजी से प्रयोग किया जा रहा है । न्यायालयों ने ऐसे दस्तावेजों को उधार के पत्र के समतुल्य माना है ।"

(घ) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नेशनल कन्सट्रक्शन कम्पनी और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में पैरा 13 और 14 में जो मताभिव्यक्ति की वह निम्नलिखित है :–

"13. इस प्रक्रम पर यह आवश्यक प्रतीत होता है कि बैंक प्रत्याभूतियों से संबंधित विधियों का विश्लेषण किया जाए । यह नियम सुस्थापित नियम है कि प्रत्याभूति जारी करने वाला बैंक करार के पक्षों के मध्य अन्तर्निहित संविदा से संबद्ध नहीं होता । किसी भी निर्वहनकारी प्रत्याभूति के अधीन बैंक का कर्तव्य स्वयमेव दस्तावेजों द्वारा ही सृजित होता है । यदि दस्तावेज उचित होते हैं तो प्रत्याभूति देने वाले बैंक को उनका आदर करना चाहिए और संदाय कर देना चाहिए । सामान्यतया जब तक कि कपट या इसी प्रकार के किसी अन्य कार्य का अभिकथन नहीं किया जाता, न्यायालय संदाय को रोके जाने के प्रयोजनार्थ प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः मध्यक्षेप नहीं करेंगे

अन्यथा आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य में विश्वास को अपूर्णनीय क्षति कारित होगी । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होगा कि अन्तर्निहित संविदा के पक्ष संविदा भंग के अभिकथनों के संबंध में अपने विवादों का निपटारा मुकदमेबाजी या माध्यस्थम् का आश्रय लिए जाने के द्वारा नहीं कर सकते, जैसा कि संविदा में अनुध्यात किया गया है । करार से उत्पन्न होने वाला कोई भी अनुतोष बाधित नहीं होता और उसके लिए वाद कारण प्रत्याभूति के प्रवर्तन से स्वतंत्र होता है । देखें यूनाइटेड कामर्शियल बैंक **बनाम** बैंक आफ इंडिया (ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1426, पृ. 1438); सिन्टेक्स इंडिया लिमिटेड **बनाम** विनमर इम्पेक्स इनकापोरेटिड (ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 1924) और यू. पी. को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड **बनाम** सिंह कन्सलटेन्टस् एण्ड इंजीनियर्स (प्रा.) लिमिटेड (उपरोक्त) ।

14. इसलिए, विधिक स्थिति यह है कि सामान्यतया बैंक प्रत्याभूति एक संविदा होती है जो अन्तर्निहित संविदा से सर्वथा भिन्न और स्वतंत्र होती है, जिसका पालन बैंक द्वारा सुनिश्चित किया जाना होता है । इस सीमा तक यह कहा जा सकता है कि वाद कारण को अन्तर्निहित संविदा से पृथक् रखते हुए महत्व दिया जाए । तथापि, वर्तमान मामले में हम ऐसा कर पाने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि उच्च न्यायालय (विद्वान् एकल न्यायपीठ और खंड न्यायपीठ, दोनों) के समक्ष ऐसा कोई अवसर नहीं था कि वे बैंक प्रत्याभूति की प्रकृति का विश्लेषण करते । अतः, हम बैंक प्रत्याभूति की सत्य प्रकृति के संबंध में कोई भी मताभिव्यक्ति करने से स्वयं को विरत करते हैं, सिवाय यह बताने के कि यह संभव है कि दोनों वाद कारण समान न हों । यह मामला विचारण न्यायालय द्वारा विचारित किया जाना चाहिए कि वह समुचित प्रक्रम पर बैंक प्रत्याभूति का विश्लेषण सही ढंग से करें ।"

21. हमने प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल सुश्री संध्या नामविदी को सुना ।

22. हमने अभिलेख और उद्धृत निर्णयों (उपरोक्त) का परिशीलन किया और हमारे समक्ष किए गए निवेदनों पर विचार किया । यह आवश्यक है कि बैंक प्रत्याभूतियों अर्थात् खंड 1, 7 और 12 के सुसंगत खंडों को निर्दिष्ट किया जाए, जो निम्नलिखित हैं :–

"1. बैंक ग्राहक से उसके अनुरोध पर ठेकेदार को 50 लाख रुपए की राशि गतिशील अग्रिम के रूप में दिए जाने पर विचार विमर्श के पश्चात् एतद्द्वारा बिना शर्त और अपरिवर्तनीय रूप से ग्राहक को संविदा के अधीन ठेकेदार की बाध्यताओं के सम्यक् रूप से निर्वहन के लिए और गतिशील अग्रिम की रकम के संबंध में ग्राहक की क्षतिपूर्ति के संबंध में प्रत्याभूत करती है । बैंक एतद्द्वारा ठेकेदार का आश्रय लिए बिना ग्राहक को संलग्न प्रपत्र में मांग किए जाने पर 50 लाख रुपए, जो गतिशील अग्रिम की 100 प्रतिशत रकम का भाग है अर्थात् संविदा मूल्य या गतिशील अग्रिम की उक्त अन्य असमायोजित रकम का 13 प्रतिशत है, तक और उससे अधिक नहीं, का संदाय करने का वचन देती है । यदि ग्राहक बैंक को अधिसूचित करता है कि ठेकेदार उक्त संविदा के निबंधनों पर ध्यान दे पाने, उनका पालन कर पाने और उनको पूर्ण कर पाने में विफल रहा है, तो बैंक ग्राहक को उसके द्वारा संलग्न प्रपत्र में मांग किए जाने पर संविदा मूल्य के 13 प्रतिशत का भाग होने के नाते 50 लाख रुपए तक की राशि या राशियों का तुरन्त संदाय करेगा, जैसा कि दावा ठेकेदार द्वारा यथापूर्वोक्त संविदा के अधीन उसकी बाध्यताओं को पूर्ण न किए जाने के कारणवश किया जाए और ग्राहक की समस्त हानियों और नुकसानों के प्रति, जिनको ग्राहक द्वारा बर्दाश्त किया जाए और समस्त लागतों, प्रभारों, खर्चों के प्रति जिनको ग्राहक द्वारा इस संबंध में वहन किया जाए, के विरुद्ध, जैसा कि ऊपर कहा गया है क्षतिपूर्ति भी करेगा । बैंक ठेकेदार द्वारा कोई नुकसान वहन किए बिना या उसके द्वारा कोई विरोध किए बिना या उसका आश्रय लिए बिना उक्त रकम का संदाय करेगा । बैंक के समक्ष संलग्न प्रपत्र में प्रस्तुत की गई ऐसी कोई भी मांग देय और इस प्रत्याभूति के अधीन बैंक द्वारा संदेय रकम के संबंध में निश्चायक होगी । इस बाबत ग्राहक का विनिश्चय कि क्या इस प्रत्याभूति या संविदा के नियमों और शर्तों का पालन किया गया है या नहीं, बैंक पर अंतिम और बाध्यकारी होगा और यदि संलग्न प्रपत्र में पत्र ग्राहक द्वारा बैंक को तारीख 17 जनवरी, 2012 को या उसके पूर्व हस्तगत कर दिया गया है, तो बैंक ग्राहक का संदाय रोकने का कोई विवेकाधिकार नहीं रखेगा (समयावधि के विस्तार को सम्मिलित करते हुए संविदा की अवधि, यदि कोई हो, या गतिशील अग्रिम की सम्पूर्ण वसूली, जो भी बाद में हो) ।

7. इसमें यहां पर समाविष्ट बैंक प्रत्याभूति उसके लागू होने के दौरान सूचना द्वारा बिना शर्त और अपरिवर्तनीय है, और तब तक पूर्णतः प्रवृत्त रहेगी जब तक कि ग्राहक बैंक द्वारा ग्राहक पर बैंक प्रत्याभूति के अधीन उसकी विधिमान्यता के भीतर अर्थात् तारीख 17 जनवरी, 2012 (देय तारीख) तक दावा दर्ज कराए जाने पर ग्राहक को पूर्ण संदाय नहीं कर दिया जाता और यदि ग्राहक द्वारा कोई दावा दर्ज नहीं कराया जाता तो प्रत्याभूति उसमें विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर व्यतीत हो जाएगी । इस प्रत्याभूति के अन्तर्गत बैंक का दायित्व 50 लाख रुपए तक सीमित है । ग्राहक अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए प्रत्याभूति के अन्तर्गत पूर्ण या आंशिक रकम का दावा कर सकता है और इस दावे को प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने के पूर्व (दावा अवधि को सम्मिलित करते हुए) एक बार या एक से अधिक बार कर सकता है । दावे की सम्पूर्ण रकम प्रत्याभूति के अन्तर्गत बैंक के दायित्व तक सीमित है । बैंक से संलग्न प्रपत्र में दावे की प्राप्ति पर तुरन्त संदाय की अपेक्षा की जाती है ।

12. यदि इस प्रत्याभूति के अन्तर्गत कोई मांग या दावा इस प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने की तारीख से 9 माह के भीतर नहीं किया जाता, तो इस प्रत्याभूति के अन्तर्गत ग्राहक के समस्त अधिकार जब्त हो जाएंगे और बैंक अपने समस्त दायित्वों से मुक्त और मोचित हो जाएगा ।"

23. तारीख 17 जनवरी, 2012 की संसूचना द्वारा बैंक आफ इंडिया ने वादी को सूचित किया कि अपीलार्थी-अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड के अनुरोध पर बैंक प्रत्याभूतियों को संशोधित कर दिया गया है और उनको तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विस्तारित कर दिया गया है । बैंक प्रत्याभूतियां तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विधिमान्य रहेंगी । तारीख 17 अप्रैल, 2012 की उक्त संसूचना इस प्रकार है :–

"तारीख 18 जुलाई, 2011 की संशोधित प्रत्याभूति संख्या 011 9IPEBG110102 जो तारीख 17 जनवरी, 2012 तक विधिमान्य है, को तारीख 17 जनवरी, 2012 तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विस्तारित किया जाता है ।

सेवा में,
बेल्लायामी कन्सट्रक्शन एण्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड,

106 प्री प्रेस हाउस,
10वां तल, नरीमन प्वाइंट,
मुम्बई-400021.

अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड, जिनके अनुरोध पर इस प्रत्याभूति को जारी किया गया है, के अनुरोध पर हम इस प्रत्याभूति को निम्नलिखित प्रकार से संशोधित करते हैं –

अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड की ओर से आपके पक्ष में जारी की गई विषयान्तर्गत प्रत्याभूति की अवधि को एतद्द्वारा तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विस्तारित किया जाता है ।

इसमें किसी अन्य बात के समाविष्ट होने के बाद भी –

(क) इस बैंक प्रत्याभूति के अन्तर्गत हमारा दायित्व 50 लाख रुपए से अधिक नहीं होगा ।

(ख) यह बैंक प्रत्याभूति तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विधिमान्य होगी ।

(ग) हम केवल इस बैंक प्रत्याभूति के अधीन प्रत्याभूत रकम या उसके किसी भाग का संदाय करने के दायी हैं यदि आप हमारे ऊपर तारीख 17 अप्रैल, 2012 को या उसके पूर्व को लिखित दावा या मांग तामील करें ।

मूल बैंक प्रत्याभूति के समस्त अन्य नियम और शर्तें अपरिवर्तित बने रहेंगे ।

यह पत्र ऊपर निर्दिष्ट मूल बैंक प्रत्याभूति का अभिन्न भाग होगा और इसको उसके साथ संलग्न करके रखा जाएगा ।

ह.

वास्ते बैंक आफ इंडिया
सहायक महाप्रबन्धक,
अंधेरी बृहत निगमित शाखा,

मुम्बई

17 जनवरी, 2012”

बैंक आफ इंडिया ने तारीख 16 अप्रैल, 2012 की एक अन्य संसूचना

द्वारा वादी को सूचित किया कि अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड के अनुरोध पर बैंक प्रत्याभूति की अवधि को तारीख 17 जुलाई, 2012 तक पुनः विस्तारित कर दिया गया है । तारीख 16 अप्रैल, 2012 की उक्त संसूचना इस प्रकार है :–

"तारीख 18 जुलाई, 2011 की संशोधित प्रत्याभूति संख्या 0119IPEGB, जो तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विधिमान्य है । इसको तारीख 18 अप्रैल, 2012 से 17 जुलाई, 2012 तक विस्तारित किया गया ।

सेवा में,
बेल्लामी कन्सट्रक्शन एण्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड,
106 प्री प्रेस हाउस,
10वां तल, नरीमन प्वाइंट,
मुम्बई-400021.

अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड, जिनके अनुरोध पर इस प्रत्याभूति को जारी किया गया है, के अनुरोध पर हम इस प्रत्याभूति को निम्नलिखित प्रकार से संशोधित करते है –

अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड की ओर से आपके पक्ष में जारी की गई विषयान्तर्गत प्रत्याभूति की अवधि को एत्‌दद्वारा तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक विस्तारित किया जाता है ।

इसमें किसी अन्य बात के समाविष्ट होने के बाद भी –

(क) इस बैंक प्रत्याभूति के अन्तर्गत हमारा दायित्व 50 लाख रुपए से अधिक नहीं होगा ।

(ख) यह बैंक प्रत्याभूति तारीख 17 जुलाई, 2012 तक विधिमान्य होगी ।

(ग) हम केवल इस बैंक प्रत्याभूति के अधीन प्रत्याभूत रकम या उसके किसी भाग का संदाय करने के दायी हैं यदि आप हमारे ऊपर तारीख 17 जुलाई, 2012 को या उसके पूर्व को लिखित दावा या मांग तामील करें ।

मूल बैंक प्रत्याभूति के समस्त अन्य नियम और शर्तें अपरिवर्तित बने रहेंगे ।

यह पत्र ऊपर निर्दिष्ट मूल बैंक प्रत्याभूति का अभिन्न भाग होगा और इसको उसके साथ संलग्न करके रखा जाएगा ।

ह.

वास्ते बैंक आफ इंडिया
सहायक महाप्रबन्धक,
अंधेरी बृहत निगमित शाखा,

मुम्बई

17 जनवरी, 2012"

बैंक आफ इंडिया के मुख्य प्रबन्धक ने तारीख 17 जुलाई, 2012 की संसूचना द्वारा वर्तमान अपीलार्थी-अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को सूचित किया कि लाभार्थी ने तुरन्त संदाय किए जाने की मांग की गई है और चूंकि उन्होंने बैंक प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने के पूर्व अवलंब सूचना प्राप्त कर ली है, वे 48 घंटों के भीतर संदाय करने के लिए बाध्य हैं । अपीलार्थी-अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड से आग्रह किया गया था कि वे यथाशीघ्र संदाय का इन्तजाम करें । इसमें के अपीलार्थी ने उसी दिन अर्थात् 17 जुलाई, 2012 को बैंक को सूचित किया कि बैंक प्रत्याभूति के अवलंब की मांग विधि की दृष्टि में आरम्भ से ही व्यर्थ है । तत्पश्चात्, बैंक ने अगले दिन अर्थात् तारीख 18 जुलाई, 2012 को वादी को सूचित किया कि उनके द्वारा लिया गया प्रत्याभूति का अवलंब बैंक प्रत्याभूतियों के निबंधनों के सामंजस्य में नहीं है और यह संभव नहीं है कि संदाय के लिए अनुरोध को स्वीकार कर लिया जाए ।

24. हम इसमें के अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए 2012 की माध्यस्थम् (एल.) संख्या 964 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 20 जुलाई, 2012 के आदेश को भी प्रत्युत्पादित करते हैं, जो निम्नलिखित हैं :–

"याचिका में पुकार कराई गई ।

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता ने न्यायालय को सूचित किया कि चूंकि याची ने उस पत्र का विरोध किया है, जिसके द्वारा बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लिया गया है, प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक को बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ एक नया पत्र जारी करेगा । इस बात को ध्यान में रखते

हुए वर्तमान याचिका का निस्तारण किया जाता है ।"

25. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने विवाद्यक विरचित किए और उन्होंने बैंक प्रत्याभूति के सुसंगत खंडों और अभिलेख को निर्दिष्ट किया । बैंक प्रत्याभूति के सुसंगत खंडों को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निर्णय के पैरा 8 में मताभिव्यक्ति की कि प्रत्याभूति एक सतत प्रत्याभूति होती है जो अपने स्वयं के बल पर चलते रहने की आज्ञा के अधीन होती है और जब तक कि उसमें उल्लिखित घटनाएं घटित न हो जाएं, खंड 11 में यह उल्लेख किया गया है कि प्रत्याभूति तब तक प्रवृत रहेगी जब तक कि संविदा के अधीन परोक्ष रूप से समापन के प्रमाणपत्र की तारीख नहीं आ जाती । आगे यह मताभिव्यक्ति की गई कि खंड 12 में एक विनिर्दिष्ट उपबंध समाविष्ट है जिसके अधीन प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने की तारीख से 9 माह के भीतर उसके अन्तर्गत मांग या दावा आरम्भ होता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पैरा 9 में मताभिव्यक्ति की कि प्रत्याभूति का अर्थान्वयन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए और इसके भाव को जानना चाहिए ।

26. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बैंक प्रत्याभूतियों के अवलंब के लिए समयसीमा का अवलंब लेते हुए निर्णय के पैरा 13 और 14 में जो मताभिव्यक्ति की, वह निम्नलिखित है :–

"वादी ने इस निर्वचन को अधिमानता प्रदान की है और संभाव्यतः उस पर कार्यवाही भी की है कि उसके लिए अनुध्यात तारीख अर्थात् 17 जुलाई, 2012 को या उसके पूर्व के समक्ष बैंक प्रत्याभूति के अधीन दावा या मांग दर्ज कराना और तत्पश्चात् संविदा के निर्वहन में ठेकेदार की विफलता के बारे में अनुध्यात तारीख के 9 माह के भीतर बैंक को यह संसूचित करते हुए उस दावा या मांग की पैरवी करना अनुज्ञेय था । चूंकि यह स्पष्टतः एक अधिसंभाव्य निर्वचन है, इसी निर्वचन को मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए contra proforentem (संदिग्द्धार्थी संविदा का निर्वचन) के सिद्धांत को वरीयता प्रदान की जानी चाहिए ।

14. प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में कोई संदेह या संदिग्धता नहीं है । स्पष्ट शब्दों में यह नितान्त रूप से जोश में दी गई दलील प्रतीत होती है । प्रत्याभूति के इस दस्तावेज में संदिग्धता और संदेह बहुतायत में हैं, जैसा कि ऊपर

दर्शित किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने अनुकल्पित रूप से निवेदन किया कि बैंक प्रत्याभूति में सर्वोपरि खंड होने के कारण किसी भी परिस्थिति में उसके विभिन्न उपबंधों के मध्य टकराव, यदि कोई हो, का निराकरण इस अनुमान के पक्ष में किया जाना चाहिए कि तारीख 17 जुलाई, 2012 की तारीख अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ अंतिम तारीख है । प्रथमतः, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट किए गए खंड की सर्वोपरि प्रकृति उस खंड के भीतर समस्त अनुमानों तक विस्तारित होती है । सर्वोपरि खंड शब्दों 'कोई अन्य बात समाविष्ट होने पर भी' के साथ आरम्भ होता है और शब्दों 'पचास लाख रुपए' के साथ समाप्त होता है : यह खंड निश्चित रूप से उस रकम की अधिकतम सीमा पर लागू होता है जिसके लिए प्रत्याभूति दी गई है, किन्तु इसके अवलंब लिए जाने की अवधि पर लागू नहीं होता, अर्थात् प्रत्याभूति की विधिमान्यता की अवधि और विनिर्दिष्ट तारीख पर या उसके पूर्व उस अवधि के अन्तर्गत दावे का दर्ज कराया जाना ? यह किसी भी प्रकार से स्पष्ट नहीं है । चाहे कुछ भी हो, यदि सर्वोपरि खण्ड को समस्त संविदाओं, जो उसका अनुसरण करती हैं, पर लागू किया जाना है तो इसको केवल एक संविदा पर लागू किया जा सकता है और उसका आधार है बैंक प्रत्याभूति का खंड 11 और 12, जो पूर्णतः निरर्थक है और जिसकी संविदा में कोई विद्यमानता नहीं है । यहां पर यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है कि ये दोनों विनिर्दिष्ट संविदाएं अर्थात् खंड 11 और 12 स्वयं अन्तर्विष्ट खंड हैं और इनका कोई अर्थ नहीं होगा यदि सर्पोपरि खंड को प्रतिवादी के सुझाव के अनुसार पढ़ा जाए । मामले के तथ्यों और उस निर्वचन, जिस पर न्यायालय द्वारा चर्चा की गई, पर विचार करते हुए सर्वोपरि खंड को उस रकम की ऊपरी सीमा का अनुमान लगाते हुए, जिसका दावा किया जाना है अर्थात् 8 बैंक प्रत्याभूतियों में 50 लाख रुपए और नवीं बैंक प्रत्याभूति में 46 लाख रुपए, निर्बंधित अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए ।"

27. हमने बैंक प्रत्याभूतियों का परिशीलन किया और बैंक प्रत्याभूतियों और सुसंगत अभिलेखों का निर्वचन किया है । हमारे विचार में यह ग्राहक के पक्ष में जारी की गई एक बिना शर्त और अपरिवर्तनीय बैंक प्रत्याभूति है जिसका निर्वहन ठेकेदार की बाध्यताओं को सम्यक् रूप से पूरा किए जाने के बाबत है । यह प्रत्याभूति गतिशील अग्रिम के रकम के संबंध में ग्राहक

की क्षतिपूर्ति करती है । बैंक ने ठेकेदार का आश्रय लिए बिना संलग्न प्रपत्र पर मात्र मांग किए जाने की स्थिति में ग्राहक को संदाय करने की जिम्मेदारी ली है । यह प्रत्याभूति सतत प्रकृति की है और इसको ग्राहक की पूर्व लिखित सहमति के बिना प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता । इसमें यह भी अभिकथित है कि ग्राहक उसी प्रकार से कार्य करने का हकदार होगा जैसे कि बैंक मूल देनदार हो और बैंक ने अपने जमानत के अधिकारों का अधित्यजन कर दिया है । प्रत्याभूति का खंड 7 अभिकथित करता है कि यह एक बिना शर्त प्रत्याभूति है और इसको इसकी चालू अवधि के दौरान मात्र सूचना द्वारा प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता और यह प्रभावी रहेगी जब तक कि ग्राहक द्वारा बैंक प्रत्याभूति के अधीन उसकी विधिमान्यता अर्थात् तारीख 17 जनवरी, 2012 के पूर्व दावा किए जाने पर बैंक द्वारा ग्राहक को पूर्ण संदाय नहीं कर दिया जाता । इस अवधि को दो बार विस्तारित किया गया था । प्रथम बार तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक और द्वितीय बार 17 जुलाई, 2012 तक । खंड 12 अभिकथित करती है कि जब तक कि प्रत्याभूति के अन्तर्गत प्रत्याभूति के व्यतीत हो जाने की तारीख के 9 माह के भीतर कोई मांग या दावा नहीं किया जाता, उस प्रत्याभूति के अन्तर्गत ग्राहक के समस्त अधिकारों का समपहरण कर दिया जाएगा और बैंक अपने दायित्व से मुक्त और मोचित हो जाएगा ।

28. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी ने विहित समयावधि के पश्चात् बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लिया है । विद्वान् काउंसेल ने अपने इस निवेदन के पक्ष में 2012 की माध्यस्थम् याचिका (एल.) संख्या 964 में तारीख 20 जुलाई, 2012 के पारित आदेश का अवलंब लिया है । उक्त आदेश के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या-1 द्वारा किए गए इस कथन को अभिलिखित किया था कि चूंकि याची (अपीलार्थी) ने बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लेने वाले पत्र की अन्तर्वस्तु का विरोध किया है, प्रत्यर्थी संख्या-1 बैंक के पक्ष में बैंक प्रत्याभूति का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ एक नया पत्र जारी करेगा और उस स्थिति में याचिका का निस्तारण हो जाएगा । हम याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए इस निवेदन को स्वीकार करने के लिए आनत हैं कि प्रत्यर्थी संख्या-1 विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए पश्चात्वर्ती बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब नहीं ले सकता था । नौ माह की अवधि बैंक प्रत्याभूति के अन्तर्गत विहित आरम्भिक समयसीमा के पश्चात्

व्यतीत हो गई थी । वादी को संबोधित बैंक द्वारा जारी की गई ऊपर निर्दिष्ट संसूचना स्पष्टतया अनुध्यात करती है कि इस मामले के अपीलार्थी (अहलूवालिया कान्ट्रेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड) द्वारा किए गए अनुरोध पर बैंक प्रत्याभूतियों को संशोधित किया गया था और विषयान्तर्गत बैंक प्रत्याभूतियों को तारीख 17 जनवरी, 2012 और 16 अप्रैल, 2012 की संसूचनाओं द्वारा विस्तारित किया गया था । बैंक द्वारा इन दोनों संसूचनाओं में विनिर्दिष्ट रूप से यह दलील दी गई है कि यदि केवल तारीख 17 अप्रैल, 2012 को या उसके पूर्व कोई लिखित दावा या मांग प्रस्तुत की जाती है या उस लिखित दावा या मांग को तारीख 17 जुलाई, 2012 तक विस्तारित किया जाता है तो बैंक प्रत्याभूत रकम के संदाय का दायी होगा । अन्य सभी नियम और शर्तें अपरिवर्तित बनी रहीं । वास्तव में बैंक प्रत्याभूतियों के अवलंब की संविदात्मक अवधि को पक्षों की सहमति द्वारा विस्तारित कर दिया गया था और अब यह अपीलार्थी के लिए अनुज्ञेय और उपयुक्त नहीं होगा कि अब वह बैंक प्रत्याभूतियों के अवलंब की समय सीमा के विवाद्यक को उठा सके ।

29. हम प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल के निवेदन में पर्याप्त बल पाते हैं कि बैंक प्रत्याभूति स्वयमेव ही स्वतंत्र संविदा नहीं होती और प्रत्यर्थी संख्या-1 वादी बैंक प्रत्याभूतियों, जो बिना शर्त थीं, का अवलंब लेने का हकदार था । बैंक प्रत्याभूतियां और सुसंगत अभिलेख इस मामले के अपीलार्थी की ओर से किए गए इस निवेदन का समर्थन नहीं करते कि यह बैंक प्रत्याभूति नहीं थी बल्कि क्षतिपूर्ति का दस्तावेज था । हम इस निवेदन को स्वीकार नहीं करते कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने बैंक प्रत्याभूतियों का द्वितीय बार अवलंब लिया था । बैंक द्वारा की गई संसूचनाओं में समाविष्ट स्पष्ट अनुध्यापनों को दृष्टि में रखते हुए समयसीमा को भी विस्तारित किया गया था और आरम्भिक बैंक प्रत्याभूतियों की शर्तों को भी समय के विस्तार द्वारा संशोधित किया गया था । हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बैंक प्रत्याभूतियों का अवलंब संविदा के निबंधनों और बैंक प्रत्याभूतियों के अनुसार लिया गया था । तारीख 17 जुलाई, 2012 का अवलंबित पत्र दस्तावेज संग्रह का भाग है । इसमें यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-वादी 9 बैंक प्रत्याभूतियों, जिनका विवरण संसूचनाओं में दिया गया है, का नकदीकरण कराएगा ।

30. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बैंक प्रत्याभूतियों के निबंधनों,

अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या-1 के मध्य संविदात्मक संबंध का उचित रीति में अर्थान्वयन किया है और जो निष्कर्ष निकाला वह तर्कसंगत और उचित है । हम विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचार में कोई अवैधता नहीं पाते । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया मत अधिसंभाव्य मत है और अपील के प्रक्रम पर इस मत में किसी भी प्रकार का मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

31. परिणामस्वरूप, अपील विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

32. अपील के खारिज किए जाने को दृष्टि में रखते हुए 2018 के कार्यवाही आरम्भ किए जाने की सूचना (एल.) संख्या 597 भी चलने योग्य नहीं है और तद्नुसार निस्तारित की जाती है ।

33. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने निर्णय की उद्घोषणा के पश्चात् आज की तारीख से 10 माह की अवधि के लिए बैंक प्रत्याभूतियों के नकदीकरण के संबंध में यथास्थिति कायम रखे जाने का अनुरोध किया । प्रत्यर्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है । हम मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निर्देशित करते हैं कि आज की तारीख से चार माह की अवधि तक इन बैंक प्रत्याभूतियों के नकदीकरण के संबंध में यथास्थिति कायम रहेगी ।

अपील खारिज की गई ।

अवि.

---

*अध्यक्ष, अजमेर विद्युत वितरण निगम लि. अजमेर

बनाम

मूलचन्द और अन्य

तारीख 23 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 – प्रतिकर के लिए आवेदन – उच्च क्षमता विद्युत लाइन और टेलीफोन लाइन के तार एक ही स्थान से गुजरने और बिजली के तार का टेलीफोन लाइन के तार के संपर्क में आ जाने के कारण टेलीफोन लाइन में विद्युत का प्रवाह हो जाना और टेलीफोन के रिसीवर तक पहुंच जाना – मृतक की मृत्यु टेलीफोन का रिसीवर उठाते समय बिजली का करंट लगने से होना – मृतक के आश्रित मोटर यान अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत प्रतिकर के हकदार हैं ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि तारीख 21 दिसम्बर, 2001 को प्रातः 8.30 बजे मृतक कमलेश द्वारा टेलीफोन की घंटी बजने पर टेलीफोन का रिसीवर उठाते समय टेलीफोन लाइन में विद्युत करंट प्रवाहित होने के परिणामस्वरूप विद्युत करंट के कारण मृत्यु हो गई थी जिसकी रिपोर्ट पुलिस द्वारा दर्ज की गई और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 के अधीन कार्यवाही के प्रकाश में मृतक की आयु व आय को ध्यान में रखते हुए क्षतिपूर्ति दिलाए जाने के प्रयोजनार्थ अधीनस्थ न्यायालय/मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष प्रतिकर के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आवेदन मंजूर कर लिया गया और मृतक के आश्रित को प्रतिकर किए जाने के लिए आदेश पारित किया गया । इस निर्णय से व्यथित होकर याची-विपक्षी द्वारा यह प्रथम अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – खण्डन में डी.ड. 1 ओमप्रकाश इंदालिया, डी.ड. 2 अशोक कुमार शर्मा, डी.ड. 3 जगदीश प्रसाद शर्मा एवं डी.ड. 4 रामावतार गुप्ता परीक्षित हुए हैं । अधीनस्थ न्यायालय ने दोनों पक्षों की मौखिक एवं

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

दस्तावेजी साक्ष्य को रोशनी में विवाद्यक संख्या 1 लगायत 7 का निस्तारण कर क्षतिपूर्ति राशि बाबत वाद डिक्री किया है, के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा न्यायालय के समक्ष तर्क उठाए गए हैं । इस क्रम में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मूल रूप से नक्शा मौका रिपोर्ट प्रदर्श-5 का अवलोकन किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से समस्त तथ्यात्मक स्थिति का वर्णन कर 11000 के.वी. विद्युत लाइन का एवं टेलीफोन लाइन का आपस में क्रोस स्थिति में एक स्थान से दूसरे स्थान पर गुजरने पर टेलीफोन लाइन व बिजली के तारों का जिस स्थान पर आपस में सम्पर्क होना बताया गया है, वहां से टेलीफोन लाइन का जलना, मौके पर तारों का पड़ा होना एवं संबंधित लाइन का विद्युत प्रवाह टेलीफोन के रिसीवर तक जाने के क्रम में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति को मद्देनजर रखते हुए घटना घटित होना माना है । पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी मृतक की मृत्यु बिजली करंट लगने से होना बताया गया है । मृतक की मृत्यु बिजली करंट के अलावा अन्य किसी कारण से हुई हो, ऐसा कोई तथ्य पत्रावली पर प्रस्तुत नहीं हुआ है । दस्तावेज प्रदर्श ए-3 के क्रम में भी स्पष्ट रूप से विभाग ने एक्सचेंज अजीतगढ़ में विद्युत करंट से कुछ कार्डस क्षतिग्रस्त होना स्वीकार किया है । ऐसी स्थिति में प्रदर्श-5 एवं प्रदर्श-3ए की रोशनी के साथ-साथ मौके पर उपस्थित गवाहान ने मृतक की मृत्यु के बाबत जो तथ्य प्रकट किए गए हैं, उसका खंडन विद्युत विभाग व प्रतिवादीगण द्वारा मात्र संभावनाओं के आधार पर किया गया है, जिसके क्रम में अधीनस्थ न्यायालय ने विस्तृत विवेचन कर विवाद्यक संख्या 2 से 4 के क्रम में निष्कर्ष पारित किया है । इस न्यायालय की राय में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक की मृत्यु विद्युत करंट लगने के परिणामस्वरूप होने के क्रम में उपलब्ध साक्ष्य का विवेचन कर किसी प्रकार की त्रुटि कारित नहीं की गई है । जहां तक मृतक की आयु का प्रश्न है, अधीनस्थ न्यायालय ने घटना के समय मृतक की आयु 20 वर्ष होने, पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उक्त तथ्य की पुष्टि होने एवं मृतक की आय के क्रम में उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर न्यूनतम वेतन दर को ध्यान में रखते हुए क्षतिपूर्ति राशि बाबत आदेश पारित किया है, जिसमें भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है । उपरोक्तानुसार विवेचन की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायसंगत होने से उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अतः प्रस्तुत अपील खारिज किए जाने योग्य है । (पैरा 13, 14 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 10.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री शहादत अली, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अजय गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी – अधीनस्थ न्यायालय, अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक), क्रम-02, सीकर केम्प श्रीमाधोपुर द्वारा वाद संख्या 25/2002 में पारित निर्णय एवं अंतिम डिक्री तारीख 6 अक्तूबर, 2005, जिसके तहत प्रत्यर्थी-वादी का वाद बाबत दिलाए जाने क्षतिपूर्ति राशि मय ब्याज डिक्री किया गया, से व्यथित होकर अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. प्रकरण के गुणागुण पर दोनों पक्षों की बहस सुनी गई । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक कमलेश की मृत्यु बिजली का करंट लगने से जलकर मृत्यु होने के क्रम में दिया गया निष्कर्ष विधि के प्रावधानों के प्रतिकूल है । उनका यह भी कथन रहा कि मृतक का पिता साक्ष्य में परीक्षित नहीं हुआ है एवं अन्य गवाहान की साक्ष्य से भी मृतक की मृत्यु बिजली का करंट लगने से होना प्रमाणित नहीं है । उनका तर्क रहा कि चिकित्सक, जिसके द्वारा मृतक का पोस्टमार्टम किया गया है, उसे भी साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया है । अतः मृतक की मृत्यु बिजली के करंट से होना प्रमाणित नहीं है । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी ने यह भी प्रकट किया कि 11000 के.वी. बिजली की लाइन से करंट टेलीफोन की लाइन में प्रवाहित होकर सिस्टम को क्षतिग्रस्त किए बिना, मृतक को क्षति पहुंचा सकता हो, यह संभव नहीं है क्योंकि टेलीफोन विभाग की रिपोर्ट प्रदर्श ए-3 के अनुसार किसी प्रकार का नुकसान होना प्रकट नहीं होता है । उनके अनुसार अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रदर्श ए-3 रिपोर्ट को सही रूप से कन्सीडर नहीं किया गया है । उनका कहना रहा कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य की रोशनी में मौका रिपोर्ट, जो कि पुलिस द्वारा बाद अनुसंधान बनाई गई है, का भी विवेचन तथ्यों के विपरीत किया है । अंत में उनका तर्क रहा कि घटना तारीख 21 दिसंबर, 2001 की है एवं वाद तारीख 13 दिसंबर, 2002 को प्रस्तुत किया गया है एवं इस देरी का कोई कारण प्रकट नहीं किया गया है । इसी प्रकार मृतक की आय की गणना कर क्षतिपूर्ति राशि

दिलाए जाने में भी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा त्रुटि की गई है । अतः अपील स्वीकार की जाकर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय व डिक्री अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई ।

3. इन तर्कों का खंडन करते हुए योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी-वादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष मृतक की मृत्यु बिजली के करंट से जलकर होने के क्रम में दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर स्वीकृत स्थिति थी एवं घटना घटित होने के तथ्य को प्रदर्श ए-3 के माध्यम से टेलीफोन विभाग द्वारा भी स्वीकार किया गया है तथा पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं नक्शे मौके की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक की मृत्यु बिजली के करंट से होने एवं मृतक की आय को मद्देनजर रखते हुए क्षतिपूर्ति राशि के क्रम में दावा डिक्री किया गया है । इन तर्कों के आधार पर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय तथ्यात्मक एवं विधिक रूप से समुचित होना बताते हुए अपील खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

4. समस्त तथ्यों पर विचार किया गया । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं पत्रावली पर उपलब्ध दस्तावेजी व मौखिक साक्ष्य का अवलोकन किया गया ।

5. प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार तारीख 21 दिसम्बर, 2001 को प्रात 8.30 बजे मृतक कमलेश द्वारा टेलीफोन की घंटी बजने पर टेलीफोन उठाते समय, टेलीफोन में विद्युत करंट प्रवाहित होने के परिणामस्वरूप विद्युत करंट से जलकर मृत्यु हो जाने के कारण पुलिस द्वारा रिपोर्ट दर्ज कर धारा 174 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत की गई कार्यवाही की रोशनी में मृतक की आय व क्षतिपूर्ति दिलाने के क्रम में अधीनस्थ न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया गया ।

6. प्रतिवादीगण द्वारा वादपत्र के अभिवचनों से इनकारी करते हुए दावा खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

7. पक्षकारान के अभिवचनों के आधार पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निम्न विवाद्यक कायम किए गए :–

1. आया दावे की मद संख्या 1 के अनुसार वादीगण का लड़का कमलेश कुमार, रामचन्द्र व रामस्वरूप की खातेदारी काश्म में बांटे से काश्त करता था व रात में फसल की रखवाली करता था तथा खाली समय में बंशी ईंट उद्योग में काम करता था ?

2. आया तारीख 21 दिसंबर, 2001 को सुबह 8.30 बजे कमलेश उक्त ईंट भट्टे में स्थित टेलीफोन में बिजली के करंट के कारण जलकर खत्म हो गया ?

3. आया उक्त टेलीफोन के तारों के ऊपर प्रतिवादीगण की 11,000 के.वी. की विद्युत लाइन क्रोस करते हुए जा रही थी, जिसके तार ढीले हो रहे थे तथा कहने के बावजूद ठीक नहीं करने के कारण लापरवाही से टेलीफोन के तारों में छूने के कारण करंट आ गया ?

4. आया कमलेश की मृत्यु प्रतिवादीगण की उपेक्षा, लापरवाही के कारण हुई ?

5. आया कमलेश की प्रतिमाह 3,000/- रुपए की आय थी तथा वादीगण 22 लाख रुपए बतौर क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के अधिकारी हैं ?

6. आया वादीगण को अन्य विधिक उपचार उपलब्ध होने के कारण यह दावा चलने योग्य नहीं है ?

7. अनुतोष ?

8. वादी की ओर से अपने पक्ष समर्थन में तीन गवाहान को एवं प्रतिवादीगण की ओर से अपने अभिवचनों के समर्थन में चार गवाहान को प्रस्तुत कर परीक्षित करवाया गया । तत्पश्चात् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों एवं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य की रोशनी में आक्षेपित निर्णय पारित किया ।

9. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं इस न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों की रोशनी में इस न्यायालय के समक्ष अपील के निस्तारण हेतु निम्न बिन्दु उत्पन्न होता है :–

आया अधीनस्थ न्यायालय द्वारा टेलीफोन लाइन में विद्युत प्रवाह होने से मृतक कमलेश की मृत्यु होना मानकर, आदेशित क्षतिपूर्ति राशि की गणना करने में त्रुटि कारित की गई है ?

10. इस क्रम में जहां तक वाद देरी से प्रस्तुत करने के क्रम में मीमों ऑफ अपील में उठाए गए तर्कों का प्रश्न है, स्वीकृत रूप से तारीख 21 दिसंबर, 2001 की घटना के क्रम में वाद अधीनस्थ न्यायालय में तारीख 13 दिसंबर, 2002 को प्रस्तुत हो चुका, जो कि एक वर्ष की अवधि के

अंतर्गत है । अपीलार्थी की ओर से ऐसी कोई कानूनी स्थिति न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई है, जिससे वादी का वाद समयावधि बाधित माना जा सके । अतः वाद देरी से प्रस्तुत करने के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा उठाया गया तर्क स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

11. जहां तक मृतक कमलेश की मृत्यु विद्युत करंट टेलीफोन लाइन में प्रवाहित होने के क्रम में उठाए गए तर्क का प्रश्न है, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अवलोकन से प्रकट होता है कि अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष मौखिक साक्ष्य के क्रम में मौके पर उपस्थित व्यक्ति के साथ-साथ जिस व्यक्ति सुरेश कुमार कागड़ा के ईंट के भट्टे पर मृतक कार्य करता था, उसे भी पी.ड. 2 के रूप में परीक्षित करवाया है तथा स्वयं ने घटना की सूचना मिलने पर मौके पर जाना एवं अन्य व्यक्तियों का मौके पर उपस्थित होना व मृतक कमलेश की लाश का आफिस के अंदर पड़े होना व बिजली के करंट से कमलेश का सारा शरीर काला होकर मुंह से झाग आकर मृत्यु होना प्रकट किया है ।

12. पी.ड. 3 छीतरमल, जो कि घटना के समय संबंधित ईंट के भट्टे पर मुनीम का कार्य करता था तथा मौके पर मौजूद था, ने अपने परीक्षण में स्पष्ट रूप से रसोई के साथ वाले कमरे में टेलीफोन की घण्टी बजने पर कमलेश द्वारा टेलीफोन के रिसीवर को उठाए जाने पर कमलेश की मृत्यु होना आवाज होने पर स्वयं का कमरे में जाकर देखने पर कमलेश का जली हुई स्थिति में पाया जाना प्रकट किया है ।

13. खण्डन में डी.ड. 1 ओमप्रकाश इंदालिया, डी.ड. 2 अशोक कुमार शर्मा, डी.ड. 3 जगदीश प्रसाद शर्मा एवं डी.ड. 4 रामावतार गुप्ता परीक्षित हुए हैं । अधीनस्थ न्यायालय ने दोनों पक्षों की मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य को रोशनी में विवाद्यक संख्या-1 लगायत 7 का निस्तारण कर क्षतिपूर्ति राशि बाबत वाद डिक्री किया है, के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा न्यायालय के समक्ष तर्क उठाए गए हैं । इस क्रम में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मूल रूप से नक्शा मौका रिपोर्ट प्रदर्श-5 का अवलोकन किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से समस्त तथ्यात्मक स्थिति का वर्णन कर 11000 के.वी. विद्युत लाइन का एवं टेलीफोन लाइन का आपस में क्रोस स्थिति में एक स्थान से दूसरे स्थान पर गुजरने पर टेलीफोन लाइन व बिजली के तारों का जिस स्थान पर आपस में सम्पर्क होना बताया गया है, वहां से टेलीफोन लाइन का जलना, मौके पर तारों का पड़ा होना एवं संबंधित लाइन का विद्युत प्रवाह टेलीफोन के रिसीवर

तक जाने के क्रम में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति को मद्देनजर रखते हुए घटना घटित होना माना है । पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी मृतक की मृत्यु बिजली करंट लगने से होना बताया गया है । मृतक की मृत्यु बिजली करंट के अलावा अन्य किसी कारण से हुई हो, ऐसा कोई तथ्य पत्रावली पर प्रस्तुत नहीं हुआ है । दस्तावेज प्रदर्श ए-3 के क्रम में भी स्पष्ट रूप से विभाग ने एक्सचेंज अजीतगढ़ में विद्युत करंट से कुछ कार्डस क्षतिग्रस्त होना स्वीकार किया है । ऐसी स्थिति में प्रदर्श-5 एवं प्रदर्श 3ए की रोशनी के साथ-साथ मौके पर उपस्थित गवाहान ने मृतक की मृत्यु के बाबत जो तथ्य प्रकट किए गए हैं, उसका खंडन विद्युत विभाग व प्रतिवादीगण द्वारा मात्र संभावनाओं के आधार पर किया गया है, जिसके क्रम में अधीनस्थ न्यायालय ने विस्तृत विवेचन कर विवाद्यक संख्या 2 से 4 के क्रम में निष्कर्ष पारित किया है । इस न्यायालय की राय में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक की मृत्यु विद्युत करंट लगने के परिणामस्वरूप होने के क्रम में उपलब्ध साक्ष्य का विवेचन कर किसी प्रकार की त्रुटि कारित नहीं की गई है ।

14. जहां तक मृतक की आयु का प्रश्न है, अधीनस्थ न्यायालय ने घटना के समय मृतक की आयु 20 वर्ष होने, पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उक्त तथ्य की पुष्टि होने एवं मृतक की आय के क्रम में उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर न्यूनतम वेतन दर को ध्यान में रखते हुए क्षतिपूर्ति राशि बाबत आदेश पारित किया है, जिसमें भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है ।

15. उपरोक्तानुसार विवेचन की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायसंगत होने से उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अतः प्रस्तुत अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

16. परिणामतः अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल प्रथम अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./अवि.

*श्याम सिंह और अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम

तारीख 4 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 8, नियम 3, 4 और 5 – प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में प्रत्याख्यान का विनिर्दिष्ट होना – यदि वादपत्र में के तथ्य संबंधी हर अभिकथन का विनिर्दिष्टतः या आवश्यक विवक्षा से प्रत्याख्यान नहीं किया जाता या प्रतिवादी के अभिवचन में यह कथन कि वह स्वीकार नहीं किया जाता, तो वह तथ्य संबंधी अभिवचन स्वीकार कर लिया गया मान लिया जाएगा – परन्तु ऐसे स्वीकार किए गए किसी भी तथ्य के बाबत ऐसी स्वीकृति के अलावा अन्य प्रकार से साबित किए जाने की अपेक्षा न्यायालय स्वविवेकानुसार करेगा ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी जो मूल वाद में वादी है, के विरुद्ध प्रत्यर्थी, जो मूल वाद में प्रतिवादी है, द्वारा वर्ष 1984 में सेवा समाप्ति आदेश पारित किया गया था, जिसके विरुद्ध अपीलार्थी-वादी ने वर्ष 1987 में वाद प्रस्तुत किया था । वाद में तारीख 22 सितम्बर, 1989 को निर्णय और डिक्री पारित कर दी गई जिसके द्वारा वादी के विरुद्ध पारित तारीख 25 जून, 1984 के सेवा समाप्ति आदेश और तारीख 4 दिसम्बर, 1984 का पारित विभागीय अपीली अधिकारी के आदेश को गैर-कानूनी, अवैध और नैसर्गिक न्यायिक सिद्धांतों के विरुद्ध होने के कारण प्रभाव शून्य घोषित कर दिया गया और वादी को समस्त आर्थिक लाभ प्राप्त करने का अधिकारी माना गया । इससे व्यथित होकर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने प्रथम अपील फाइल की । किन्तु विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय ने वाद को समयसीमा द्वारा बाधित होने के आधार पर खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को अपास्त कर दिया । प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी-वादी ने द्वितीय अपील फाइल की । द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी-वादी की ओर से अपीलीय अधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने के बाबत जो तथ्य प्रकट किया गया है, उसको नहीं मानने का कोई कारण अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के समक्ष नहीं था । यदि प्रत्यर्थी द्वारा अपीलीय अधिकारी का आदेश पारित होने के बाबत तथ्यात्मक स्थिति का खंडन होता तो निश्चित रूप से विवाद्यक विरचित किए जाकर, अपीलीय अधिकारी द्वारा आदेश पारित किया गया है या नहीं, इस पर निष्कर्ष दिया जा सकता था । अतः अपीलार्थी-वादी की उपरोक्त साक्ष्य से अपीलार्थी-वादी को तारीख 25 जून, 1984 को सेवा समाप्ति किया जाना एवं तारीख 4 दिसम्बर, 1984 को विभागीय अपीलीय अधिकारी द्वारा अपील खारिज करने का तथ्य प्रकट होता है । मद्देनजर रखते हुए, वाद तारीख 24 नवम्बर, 1987 को प्रस्तुत होने के परिणामस्वरूप वाद को मियाद बाहर मानते हुए एवं अपीलीय अधिकारी द्वारा पारित आदेश की तथ्यात्मक स्थिति को नजरअंदाज कर निर्णय पारित किया गया है, वह उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति व अभिवचनों के खंडन के अभाव में अपास्त किए जाने योग्य है । परिणामतः अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत अपील स्वीकार की जाती है एवं अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय को निर्णय तारीख 17 फरवरी, 1997 अपास्त किया जाकर, अधीनस्थ विचारण न्यायालय का निर्णय तारीख 22 सितंबर, 1989 यथावत रखा जाता है । (पैरा 19, 20, 21 और 22)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1997 की एस. बी. सिविल द्वितीय अपील सं. 291.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बाबूलाल गुप्ता, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अनुरूप सिंघी और तरूण कुमार वर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी – अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय (अपर जिला न्यायाधीश, क्रम-5 जयपुर नगर, जयपुर) द्वारा नियमित अपील संख्या-352/1991 में पारित निर्णय 17 फरवरी, 1997 के विरुद्ध अपीलार्थी-वादी की ओर से यह द्वितीय अपील पेश की गई है । अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय के तहत प्रत्यर्थी रोडवेज की ओर से प्रस्तुत अपील स्वीकार करते हुए अधीनस्थ विचारण न्यायालय, अपर मुंसिफ एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट, क्रम-5, जयपुर नगर द्वारा दीवानी

प्रकरण संख्या 74/1989 में अपीलार्थी-वादी का वाद स्वीकार करने के क्रम में पारित निर्णय तारीख 22 सितम्बर, 1989 को अपास्त किया जाकर अपीलार्थी-वादी का वाद खारिज किया गया ।

2. यह अपील तारीख 30 अक्तूबर, 2001 को सुनवाई हेतु विचारार्थ ग्रहण की जा चुकी है । अतः दोनों पक्षों की प्रकरण में सारभूत प्रश्न बाबत सुनने की सहमति के पश्चात, इस अपील में निम्न सारभूत प्रश्न विरचित किए जाते हैं :–

(1) क्या वादपत्र में तथ्य के प्रत्येक आरोप से इनकार किया जाना चाहिए, यदि विर्निदिष्ट रूप से या आवश्यक विविक्षा द्वारा इनकार न कया गया हो तो क्या उस तथ्य के आरोप को स्वीकार माना जाएगा ? साथ ही क्या वर्तमान मामले में इसका प्रभाव होगा जिसमें प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल नहीं किया है और तथ्यों से इनकार नहीं किया है ?

(2) क्या वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का प्रतिवादियों द्वारा उनके साक्ष्य के माध्यम से खंडन नहीं है और क्या इस आधार पर वादी के साक्ष्य को स्वीकृत माना जाएगा और यह सुझाव दिए जाने पर कि यदि सुझाव पर किया जाना समझा जाएगा, यदि प्रतिवादियों के साक्षियों ने वादी के साक्ष्य को स्वीकार कर लिया है या समुचित प्रत्युत्तर को छुपाया है या देने में विफल रहे हैं, तो वर्तमान मामले में इसका क्या प्रभाव होगा ? स्वीकार या छिपाने या उचित उत्तर देने में चूक है तो क्या वर्तमान मामले में इसके प्रभाव पड़गें ?

3. इस द्वितीय अपील में उपरोक्त सारभूत प्रश्न विरचित किए जाने के पश्चात दोनों पक्षों ने न्यायालय के समक्ष प्रकट किया कि अपीलार्थी-वादी का सेवा समाप्ति आदेश वर्ष 1984 का है एवं अधीनस्थ विचारण न्यायालय में अपीलार्थी-वादी की ओर से वाद वर्ष 1987 में प्रस्तुत हुआ एवं तारीख 22 सितम्बर, 1989 को निस्तारित हुआ है तथा अधीनस्थ न्यायालय से अपील तारीख 17 फरवरी, 1997 को निस्तारित होकर इस न्यायालय में द्वितीय अपील वर्ष 1997 से विचाराधीन है । उनका कथन रहा कि चूंकि मामले में सेवा समाप्ति से संबंधित विवाद अन्तर्वलित है, अतः उपरोक्त सारभूत प्रश्नों की रोशनी में आज ही बहस अंतिम सुनकर अपील निस्तारण कर दिया जाए ।

4. दोनों पक्षों की ओर से न्यायालय के समक्ष कहे गए उक्त कथनों

को ध्यान में रखते हुए अपील पर अंतिम बहस सुनी गई ।

5. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी का कथन रहा कि अधीनस्थ विचारण न्यायालय में वादी की ओर से प्रस्तुत वाद डिक्री किए जाने के पश्चात्, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने अधीनस्थ विचारण न्यायालय द्वारा बनाए गए विवाद्यक पर निष्कर्ष दिए बिना, वाद की प्रकृति पर विचार किए बिना, मात्र मियाद के बिन्दु पर अधीनस्थ विचारण न्यायालय का निर्णय अपास्त किया गया है, जो विधि के प्रावधानों के प्रतिकूल है । उनका यह भी कथन रहा कि अधीनस्थ विचारण न्यायालय में वादी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य का खंडन प्रत्यर्थी-रोडवेज की ओर से नहीं किया गया है तथा प्रत्यर्थी-रोडवेज द्वारा वादपत्र के खंडन में जवाब दावा भी प्रस्तुत नहीं किए जाने के बावजूद वादी के साक्ष्य की अभिखंडित साक्ष्य को नजरअंदाज कर अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा अपीलार्थी-वादी का वाद खारिज किया गया है । उनका अंत में यह भी कथन रहा कि अपीलीय न्यायालय यदि मियाद के बिन्दु को कानूनी बिन्दु मानकर तय करता है तो उस स्थिति में अपीलीय न्यायालय द्वारा यह देखा जाना आवश्यक है कि मियाद के बिन्दु के क्रम में जो अभिवचन पत्रावली पर है, उस क्रम में साक्ष्य लिए बिना, मियाद के बिन्दु को तय नहीं किया जा सकता है । लेकिन अपीलीय न्यायालय ने अभिवचनों में अंकित तथ्यों को नजरअंदाज कर निर्णय पारित किया गया है, अतः अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाकर अधीनस्थ विचारण न्यायालय के निर्णय को यथावत रखा जाए ।

6. इसके विपरीत योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी का कथन रहा कि मियाद का बिन्दु कानूनी है तथा विवाद्यक कायम किए बिना भी अपीलीय न्यायालय कानूनी बिन्दु पर अपना मत व्यक्त कर सकता है । उनका यह भी तर्क रहा कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने सेवा समाप्ति के आदेश से दावा प्रस्तुत होने अवधि को मद्देनजर रखकर वाद 3 वर्ष के पश्चात् प्रस्तुत होने के आधार पर वाद मियाद बाहर माना है । अतः अपील खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

7. योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी का अन्य तर्क यह भी रहा कि वादी को अपने पैरों पर खड़े होकर वाद को साबित करना होता है । यदि प्रत्यर्थी-रोडवेज की ओर से जवाबदावा प्रस्तुत नहीं भी किया गया है तब भी अपीलार्थी-वादी का प्रकरण प्रमाणित नहीं है, अतः अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा जो निर्णय पारित किया गया है, वह पूर्णतः न्यायोचित है ।

8. दोनों पक्षों के तर्कों एवं मामले के समस्त तथ्यों पर विचार किया गया ।

9. अधीनस्थ विचारण न्यायालय में प्रस्तुत वाद की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार अपीलार्थी-वादी की तारीख 11 अक्तूबर, 1983 को (प्रत्यर्थी-रोडवेज में परिचालक के पद पर) नियुक्ति होने के पश्चात्, अपीलार्थी-वादी के विरुद्ध तीन सवारी एवं 30 किलोग्राम लगेज बिना टिकट ले जाने के रिमार्क के आधार पर, प्रत्यर्थी-विभाग द्वारा बिना किसी आधार व सुनवाई के तारीख 25 जून, 1984 को सेवा समाप्ति का आदेश पारित किया गया था । तत्पश्चात् विभागीय अपीलीय अधिकारी ने तारीख 4 दिसम्बर, 1984 को आदेश के जरिए सेवा समाप्ति के आदेश की पुष्टि की । जबकि निरीक्षण के वक्त न तो बीसीआर बनाई गई न मौके पर बिना टिकट यात्रियों के बयान लिए गए एवं तत्पश्चात् अपीलार्थी-वादी के खिलाफ कोई विभागीय जांच भी नहीं की गई तथा न ही अपीलार्थी-वादी को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया ।

10. अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत वादपत्र के उपरोक्त अभिवचनों के खंडन के क्रम में प्रत्यर्थी-रोडवेज को जवाबदावा प्रस्तुत करने का समुचित अवसर दिए जाने के बावजूद, जवाबदावा प्रस्तुत नहीं किए जाने पर, अधीनस्थ विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 28 जनवरी, 1989 को जवाबदावा बंद किया गया । चूंकि अधीनस्थ विचारण न्यायालय में जवाबदावा प्रस्तुत नहीं हुआ, ऐसी स्थिति में अधीनस्थ विचारण न्यायालय द्वारा प्रकरण में विवाद्यक कायम नहीं किए गए एवं पक्षों के साक्ष्य को लेखबद्ध कर वादी का वाद डिक्री किया जाकर सेवा समाप्ति का आदेश तारीख 25 जून, 1984 एवं विभागीय अपीलीय अधिकारी का आदेश तारीख 4 दिसम्बर, 1984 गैरकानूनी, अवैध एवं नैसर्गिक न्यायिक सिद्धांतों के खिलाफ होने से शून्य एवं बेअसर घोषित कर वादी को समस्त आर्थिक लाभ प्राप्त करने का अधिकारी माना गया ।

11. अधीनस्थ विचारण न्यायालय के उक्त निर्णय के विरुद्ध प्रत्यर्थी-रोडवेज की ओर से प्रस्तुत अपील अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने स्वीकार कर मियाद के बिन्दु पर, वादी का वाद मियाद बाहर होने से अधीनस्थ विचारण न्यायालय का निर्णय अपास्त किया गया ।

12. जहां तक मियाद के बिन्दु का प्रश्न है, इस क्रम में योग्य

अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी द्वारा मूल रूप से यह प्रकट किया गया कि मियाद के क्रम में अधीनस्थ विचारण न्यायालय द्वारा कोई विवाद्यक कायम नहीं किया गया है एवं विवाद्यक के अभाव में अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा मियाद बिन्दु बनाया गया है, वह विधि के प्रावधानों के प्रतिकूल है ।

13. इस क्रम में योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी की ओर से न्यायालय के समक्ष मूल रूप से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि मियाद को बिन्दु पर यदि विवाद्यक विरचित नहीं किए गए हों, तब भी मियाद का बिन्दु प्रकरण की मूल धुरी है एवं प्रकरण की जड़ को प्रभावित करता है तथा अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय मियाद बिन्दु को बिना विवाद्यक विरचित किए भी तय कर सकता है । इस क्रम में इस न्यायालय की समकक्ष पीठ द्वारा एकलपीठ सिविल प्रथम अपील संख्या 923/2017 में पारित निर्णय तारीख 21 मई, 2018 से हम सहमत हैं, लेकिन जहां दोनों अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष मियाद का बिन्दु प्रारंभ होने की तिथि की स्वीकृत स्थिति है तथा संबंधित न्यायालय द्वारा विवाद्यक नहीं बनाए गए हैं उस पर विचार नहीं किया गया है, तब भी अपीलीय न्यायालय आधारभूत बिन्दु को तय करने में सक्षम है ।

14. प्रकरण में विरचित सारभूत प्रश्न, तर्कों में उठाए गए मियाद के बिन्दु के क्रम में अधीनस्थ विचारण न्यायालय में अभिवचनात्मक, साक्ष्य एवं कानून की रोशनी में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति निम्न प्रकार है :—

15. सेवा समाप्ति के आदेश को निरस्त करने का मुख्य आधार अपीलार्थी-वादी की ओर से वादपत्र के पैरा संख्या 4(च) में निम्न प्रकार अंकित किया है कि :—

> वादी को अपील में भी बचाव एवं सुनवाई का मौका नहीं दिया गया तथा वादी की अपील को खारिज करते समय अपीलीय अधिकारी ने अपील के तथ्यों पर गौर नहीं करते हुए वादी को बचाव एवं सुनवाई का मौका नहीं दिया एवं वादी की अपील अन्य आधारों पर खारिज कर दी गई, अतः आदेश कानूनन निरस्तनीय है ।

16. इस क्रम में अभिवचनों के समर्थन में अपीलार्थी-वादी ने अपनी साक्ष्य में निम्न तथ्य प्रकट किया है कि :—

> मैंने सेवा समाप्ति के विरुद्ध अपील की थी वहां मेरे को बचाव व सुनवाई का मौका नहीं दिया, जिसे 4 दिसम्बर, 1984 को खारिज

कर दिया । यह बात मेरे को हैड आफिस जाने पर पता लगी, मेरे को आदेश की प्रति नहीं दी गई ।

17. इस क्रम में प्रत्यर्थी रोडवेज की ओर से परीक्षित गवाह डी.ड. 1 श्याम बिहारी भटनागर ने अपने मुख्य परीक्षण में प्रकट किया कि :–

> वादी की नियुक्ति दैनिक वेतन भोगी परिचालक पर की गई थी, इसकी आवश्यकता न होने पर वादी तारीख 25 जून, 1984 को सेवा से पृथक् कर दिया ।

18. पुनः प्रत्यर्थी गवाह डी.ड. 1 श्याम बिहारी भटनागर ने भी अपनी जिरह में प्रकट किया कि :–

> मैं वादी की पत्रावली अनुशासनात्मक नहीं लाया । प्रदर्श 2 में वादी के विरुद्ध 23 जून, 1984 को 3 सवारी का रिमार्क लगाया गया था । मेरे को पता नहीं कि उक्त रिमार्क के संबंध में बचाव सुनवाई का मौका दिया गया था या नहीं । जांच की गई या नहीं मेरे को पता नहीं । वादी का अपीलीय अधिकारी कौन था मैं नहीं बता सकता ।

19. अपीलार्थी-वादी की ओर से अपीलीय अधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने के बाबत जो तथ्य प्रकट किया गया है, उसको नहीं मानने का कोई कारण अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के समक्ष नहीं था । यदि प्रत्यर्थी द्वारा अपीलीय अधिकारी का आदेश पारित होने के बाबत तथ्यात्मक स्थिति का खंडन होता तो निश्चित रूप से विवाद्यक विरचित किए जाकर, अपीलीय अधिकारी द्वारा आदेश पारित किया गया है या नहीं, इस पर निष्कर्ष दिया जा सकता था ।

20. अतः अपीलार्थी-वादी की उपरोक्त साक्ष्य से अपीलार्थी-वादी को तारीख 25 जून, 1984 को सेवा समाप्ति किया जाना एवं तारीख 4 दिसम्बर, 1984 को विभागीय अपीलीय अधिकारी द्वारा अपील खारिज करने का तथ्य प्रकट होता है ।

21. अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने मात्र अपीलार्थी-वादी द्वारा प्रस्तुत वाद में अंकित सेवा समाप्ति के आदेश दिनांकित 25 जून, 1984 को मद्देनजर रखते हुए, वाद तारीख 24 नवम्बर, 1987 को प्रस्तुत होने के परिणामस्वरूप वाद को मियाद बाहर मानते हुए एवं अपीलीय अधिकारी द्वारा पारित आदेश की तथ्यात्मक स्थिति को नजरअंदाज कर निर्णय पारित किया गया है, वह उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति व अभिवचनों के खंडन के

अभाव में अपास्त किए जाने योग्य है ।

22. परिणामतः अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत अपील स्वीकार की जाती है एवं अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय का निर्णय तारीख 17 फरवरी, 1997 अपास्त किया जाकर, अधीनस्थ विचारण न्यायालय का निर्णय तारीख 22 सितंबर, 1989 यथावत रखा जाता है ।

23. यह आदेश/निर्णय आज तारीख 4 अक्तूबर, 2018 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(i) के तहत भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या 1, तारीख 2 जनवरी, 1999 एवं राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के तहत हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप मूल निर्णय हिन्दी भाषा में लिखाया गया । जिसका कार्यालय द्वारा प्रदत्त अनुवादक से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करवाकर प्रमाणित प्रति जारी की जाए ।

द्वितीय अपील मंजूर की गई ।

मही./अवि.

संसद् के अधिनियम

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997

(1997 का अधिनियम संख्यांक 24)

[28 मार्च, 1997]

[1][दूर-संचार सेवाओं को विनियमित करने, विवादों को न्यायनिर्णीत करने, अपीलों को निपटाने और दूर-संचार सेक्टर के सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करने, दूर-संचार सेक्टर के सुव्यवस्थित विकास को संप्रवर्तित और सुनिश्चित करने के लिए भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण] की स्थापना का और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के अड़तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :—

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ — (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह 25 जनवरी, 1997 को प्रवृत्त हुआ समझा जाएगा ।

2. परिभाषाएं — (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,—

(क) "नियत दिन" से वह तारीख अभिप्रेत है जिसको धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण स्थापित किया जाता है ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 2 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

[1][(कक) "अपील अधिकरण" से धारा 14 के अधीन स्थापित दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण अभिप्रेत है ;]

(ख) "प्राधिकरण" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(ग) "अध्यक्ष" से धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त प्राधिकरण का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(घ) "निधि" से धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन गठित निधि अभिप्रेत है ;

(ङ) "अनुज्ञप्तिधारी" से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे विनिर्दिष्ट सार्वजनिक दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त है ;

[1][(ङक) "अनुज्ञापक" से केन्द्रीय सरकार या तार प्राधिकरण अभिप्रेत है जो भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 4 के अधीन कोई अनुज्ञप्ति प्रदान करता है ;]

(च) "सदस्य" से, धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त प्राधिकरण का कोई सदस्य अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी हैं ;

(छ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(ज) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(झ) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ;

(ञ) "सेवा प्रदाता" से [2][सेवा प्रदाता के रूप में सरकार] अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत अनुज्ञप्तिधारी भी है ;

(ट) "दूर-संचार सेवा" से किसी भांति की ऐसी सेवा (जिसके अन्तर्गत इलैक्ट्रानिक डाक, वाक डाक, आंकड़े सेवाएं, श्रव्य टैक्स सेवाएं,

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 3 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 3 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

वीडियो टैक्स सेवाएं, रेडियो पेजिंग और सेलुलर चल टेलीफोन सेवाएं है) अभिप्रेत हैं जो उपभोक्ताओं को चिह्नों, प्रतीकों, लेखन, बिंबों और ध्वनियों के किसी पारेषण या अभिग्रहण अथवा तार, रेडियो, दृश्य या अन्य वैद्युत चुम्बकीय साधनों द्वारा किसी प्रकार की आसूचना के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है किन्तु इसके अन्तर्गत प्रसारण सेवाएं नहीं हैं :

[1][परंतु केन्द्रीय सरकार अन्य सेवा को जिसके अन्तर्गत प्रसारण सेवाएं भी हैं, दूर-संचार सेवा होना अधिसूचित कर सकेगी ।]

(2) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं किन्तु भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में या भारतीय बेतार तार यांत्रिकी अधिनियम, 1933 (1933 का 17) में परिभाषित हैं, वही अर्थ हैं जो उन अधिनियमों में हैं ।

(3) इस अधिनियम में किसी ऐसी विधि के प्रति निर्देश का, जो जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवृत्त नहीं है, उस राज्य की बाबत यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में तत्स्थानी विधि के, यदि कोई हो, प्रति निर्देश है ।

अध्याय 2

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण

3. प्राधिकरण की स्थापना और निगमन – (1) ऐसी तारीख से जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी जिसे भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण कहा जाएगा ।

(2) प्राधिकरण पूर्वोक्त नाम का शाश्वत् उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला निगमित निकाय होगा जिसे इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जंगम और स्थावर दोनों ही प्रकार की संपत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन करने की और संविदा करने की शक्ति होगी तथा वह उक्त नाम से वाद लाएगा या उस पर वाद लाया जाएगा ।

[2][(3) प्राधिकरण एक अध्यक्ष, और दो से अनधिक पूर्णकालिक सदस्यों और दो से अनधिक अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बनेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ।]

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 3 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 4 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

(4) प्राधिकरण का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में होगा ।

[1][**4. अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं** – प्राधिकरण का अध्यक्ष और अन्य सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाएंगे जिन्हें दूर-संचार, उद्योग, वित्त, लेखाकर्म, विधि, प्रबंध या उपभोक्ता मामलों का विशेष ज्ञान और वृत्तिक अनुभव है :

परंतु कोई व्यक्ति जो सरकार की सेवा में है, या रहा है, सदस्य के रूप में तभी नियुक्त किया जाएगा जब ऐसे व्यक्ति ने भारत सरकार के सचिव या अपर सचिव का पद या अपर सचिव और सचिव का पद या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार में कोई समतुल्य पद तीन वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए धारण किया हो ।]

5. अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की पदावधि, सेवा की शर्तें, आदि – (1) किसी व्यक्ति को अध्यक्ष या सदस्य के रूप में नियुक्त करने से पूर्व, केन्द्रीय सरकार अपना यह समाधान कर लेगी कि उस व्यक्ति का कोई ऐसा वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे ऐसे सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो ।

[2][(2) अध्यक्ष और अन्य सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त यथा अधिसूचित उस तारीख से जिसको वे अपने पद ग्रहण करते हैं तीन वर्ष से अनधिक अवधि के लिए या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, जो भी पूर्वतर हो, पद धारण करेंगे ।

(3) भारतीय दूर-संचार विनियामक (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ के दिन, प्राधिकरण के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कोई व्यक्ति और सदस्य के रूप में नियुक्त और उस रूप में पद धारण कर रहा प्रत्येक अन्य व्यक्ति ऐसे प्रारंभ से ठीक पूर्व अपने पद रिक्त कर देंगे और ऐसा अध्यक्ष तथा ऐसे अन्य सदस्य अपनी पदावधि की या किसी अन्य सेवा संविदा की समयपूर्व समाप्ति के लिए तीन मास के वेतन और भत्ते से अनधिक प्रतिकर का दावा करने के लिए हकदार होंगे ।]

(4) सरकारी कर्मचारी को, [2][अध्यक्ष या पूर्णकालिक सदस्य के रूप में उसका चयन] होने पर, [2][यथास्थिति, अध्यक्ष या पूर्णकालिक सदस्य के रूप में पद ग्रहण करने] से पूर्व सेवा से निवृत्त होना होगा ।

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 5 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

(5) अध्यक्ष और [1][पूर्णकालिक सदस्यों] को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी, जो विहित की जाएं ।

(6) अध्यक्ष या किसी सदस्य के वेतन, भत्तों और उसकी सेवा की अन्य शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

[2][(6क) अंशकालिक सदस्य ऐसे भत्ते प्राप्त करेंगे जो विहित किए जाएं] ।

(7) उपधारा (2) [3]*** में किसी बात के होते हुए भी, कोई सदस्य,—

(क) केंद्रीय सरकार को कम-से-कम तीन मास की लिखित सूचना देकर अपना पद त्याग सकेगा ; या

(ख) धारा 7 के उपबंधों के अनुसार अपने पद से हटाया जा सकेगा ।

[4][(8) अध्यक्ष और पूर्णकालिक सदस्य, उस तारीख से जिसको वे इस प्रकार पद पर नहीं रह गए हैं, दो वर्ष की अवधि के लिए केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन के सिवाय,—

(क) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई नियोजन ; या

(ख) दूर-संचार सेवा के कारबार में किसी कंपनी में कोई नियुक्ति, स्वीकार नहीं करेंगे] ।

(9) अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य के पद पर हुई कोई रिक्ति, उस तारीख से जिसको ऐसी रिक्ति होती है, तीन मास की अवधि के भीतर भरी जाएगी ।

[5]* * * * *

6. अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की शक्तियां — (1) अध्यक्ष को प्राधिकरण के कार्यकलापों के संचालन में साधारण अधीक्षण और निदेश देने की शक्तियां होंगी और वह प्राधिकरण के अधिवेशनों की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त, प्राधिकरण

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।
[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।
[3] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) लोप किया गया ।
[4] 2014 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 द्वारा (28-5-2014 से) प्रतिस्थापित ।
[5] 2014 के अधिनियम सं. 20 की धारा 7 द्वारा लोप किया गया ।

की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा और ऐसी अन्य शक्तियों और कृत्यों का निर्वहन करेगा जो विहित की जाएं ।

(2) केन्द्रीय सरकार सदस्यों में से किसी एक को प्राधिकरण का उपाध्यक्ष नियुक्त कर सकेगी जो अध्यक्ष की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो प्राधिकरण द्वारा विहित किए जाएं या उसे प्रत्यायोजित किए जाएं ।

7. कतिपय परिस्थितियों में सदस्य का पद से हटाया जाना और निलंबन – (1) केन्द्रीय सरकार किसी ऐसे सदस्य को पद से हटा सकेगी,–

(क) जिसे दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया है ; या

(ख) जिसे किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(ग) जो शारीरिक या मानसिक रूप से सदस्य के रूप में कार्य करने अयोग्य हो गया है ; या

(घ) जिसने ऐसा वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल रूप से प्रभाव पड़ने की संभावना है ; या

(ङ) जिसने अपनी स्थिति का ऐसा दुरुपयोग किया है जिससे उसके पद पर बने रहने से लोक हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

[1][(2) ऐसा कोई सदस्य उपधारा (1) के खंड (घ) या खंड (ङ) के अधीन अपने पद से तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उसे मामले में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो ।]

8. अधिवेशन – (1) प्राधिकरण ऐसे समय और स्थानों पर अधिवेशन करेगा और अपने अधिवेशनों में कार्य करने के संबंध में (जिसके अंतर्गत ऐसे अधिवेशनों में गणपूर्ति है) प्रक्रिया के ऐसे नियमों का पालन करेगा, जो विनियमों द्वारा उपबंधित किए जाएं ।

(2) अध्यक्ष या यदि वह किसी कारण से प्राधिकरण के अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो उपाध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उस

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित ।

अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना गया कोई अन्य सदस्य, उस अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

(3) प्राधिकरण के किसी अधिवेशन में उसके समक्ष आने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत द्वारा किया जाएगा और मत बराबर होने की दशा में, अध्यक्ष का या उसकी अनुपस्थिति में अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति का, द्वितीय या निर्णायक मत होगा ।

(4) प्राधिकरण अपने अधिवेशनों में कार्य करने के लिए विनियम बना सकेगा ।

9. रिक्तियों, आदि से प्राधिकरण की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – प्राधिकरण का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) प्राधिकरण में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) प्राधिकरण के सदस्य के रूप में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति की नियुक्ति में कोई त्रुटि है ; या

(ग) प्राधिकरण की प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है, जो मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

10. प्राधिकरण के अधिकारी और अन्य कर्मचारी – (1) प्राधिकरण ऐसे अधिकारियों और उतने कर्मचारियों को नियुक्त कर सकेगा जो वह इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो [1][विहित] की जाएं :

[2][परंतु दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से पूर्व, प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्तों तथा सेवा की अन्य शर्तों की बाबत बनाया गया कोई विनियम, धारा 35 की उपधारा (2) के खंड (गक) के अधीन बनाए गए नियमों के अधिसूचित होने पर तत्काल प्रभाव से प्रवर्तन में नहीं रह जाएगा ।]

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 8 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 8 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

अध्याय 3

प्राधिकरण की शक्तियां और कृत्य

11. प्राधिकरण के कृत्य – [1][(1) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण के कृत्य निम्नलिखित होंगे,–

(क) निम्नलिखित विषयों के संबंध में स्वप्रेरणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर सिफारिशें करना, अर्थात् :–

(i) नए सेवा प्रदाता के प्रवेश की आवश्यकता और उसका समय निर्धारण ;

(ii) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तें ;

(iii) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति का प्रतिसंहरण ;

(iv) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाने और दक्षता वृद्धि के लिए उपाय करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं में प्रौद्योगिक सुधार ;

(vi) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर के निरीक्षण के पश्चात् सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म ;

(vii) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास के लिए और दूर-संचार उद्योग के संबंध में साधारणतया अन्य विषय के लिए उपाय ;

(viii) उपलब्ध परिदृश्य का दक्षतापूर्ण प्रबंधन ;

(ख) निम्नलिखित कृत्यों का निर्वहन करना, अर्थात् :–

(i) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 9 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

(ii) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से पूर्व प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों में किसी बात के होते हुए भी सेवा प्रदाताओं के बीच अन्तः सम्बद्धता के निबंधन और शर्तें नियत करना ;

(iii) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और प्रभावी अन्तःसंबंध सुनिश्चित करना ;

(iv) सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उसकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था का विनियमन करना ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी के मानक अधिकथित करना और सेवा की क्वालिटी सुनिश्चित करना तथा सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई गई ऐसी सेवा का आवधिक सर्वेक्षण करना जिससे कि दूर-संचार सेवा के उपभोक्ताओं के हितों को संरक्षित किया जा सके ;

(vi) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार के स्थानीय और लम्बी दूरी वाले सर्किट उपलब्ध कराने के लिए समयावधि अधिकथित करना और सुनिश्चित करना ;

(vii) अन्तःसम्बन्धित करारों का और सभी ऐसे अन्य विषयों के ऐसे रजिस्टर रखना जो विनियमों में उपबंधित किए जाएं ;

(viii) खंड (vii) के अधीन रखे गए रजिस्टर को ऐसी फीस के संदाय पर और ऐसी अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन पर जो विनियमों में उपबंधित की जाएं, जनता के किसी व्यक्ति के निरीक्षण के लिए खुला रखना ;

(ix) सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना ;

(ग) ऐसी सेवाओं के संबंध में फीस और अन्य प्रभार ऐसी दरों पर उद्गृहीत करना जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाएं ;

(घ) ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करना जिनके अन्तर्गत ऐसे प्रशासनिक और वित्तीय कृत्य भी हैं, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए

आवश्यक हों :

परंतु इस उपधारा के खंड (क) में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण की सिफारिशें केन्द्रीय सरकार पर आबद्धकर नहीं होंगी :

परंतु यह और कि केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को जारी की जाने वाली नई अनुज्ञप्ति की बाबत इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत प्राधिकरण से सिफारिशों की ईप्सा करेगी और प्राधिकरण अपनी सिफारिशें उस तारीख से, जिसको केन्द्रीय सरकार सिफारिशों की ईप्सा करती है, 60 दिन की अवधि के भीतर अग्रेषित करेगा :

परंतु यह भी कि प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार से ऐसी जानकारी या दस्तावेज, जो इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) के अधीन सिफारिश किए जाने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों, प्रस्तुत करने के लिए अनुरोध कर सकेगा और केन्द्रीय सरकार ऐसे अनुरोध की प्राप्ति से सात दिन की अवधि के भीतर ऐसी जानकारी का प्रदाय करेगी :

परंतु यह भी कि यदि दूसरे परंतुक में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर या ऐसी अवधि के भीतर जो केन्द्रीय सरकार और प्राधिकरण के बीच आपस में करार पाई जाए, प्राधिकरण से कोई सिफारिश प्राप्त नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को अनुज्ञप्ति जारी कर सकेगी :

परंतु यह भी कि यदि केन्द्रीय सरकार प्राधिकरण की उस सिफारिश पर विचार करने पर प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि ऐसी सिफारिश स्वीकार नहीं की जा सकती या उसमें उपांतरण आवश्यक हैं, तो वह सिफारिश को प्राधिकरण को वापस पुनर्विचार के लिए निर्दिष्ट कर सकेगी और प्राधिकरण ऐसे निर्देश की प्राप्ति से पंद्रह दिन की अवधि के भीतर सरकार द्वारा किए गए निर्देश पर विचार करने के पश्चात् अपनी सिफारिश केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित कर सकेगा और सिफारिश के, यदि कोई हो, प्राप्त होने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार अंतिम विनिश्चय करेगी ।]

(2) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण, समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत में और भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं इस अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी, जिनके

अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा :

परंतु प्राधिकरण एक समान दूर-संचार सेवाओं की बाबत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न दरें अधिसूचित कर सकेगा और जहां पूर्वोक्त रूप में भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाती हैं वहां प्राधिकरण उसके लिए कारण अभिलिखित करेगा ।

(3) प्राधिकरण, [1][उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन] अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय, भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कृत्य नहीं करेगा ।

(4) प्राधिकरण अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।

12. जानकारी मांगने, अन्वेषण करने आदि की प्राधिकरण की शक्तियां – (1) जहां प्राधिकरण के लिए ऐसा करना समीचीन है वहां वह लिखित आदेश द्वारा, –

(क) किसी सेवा प्रदाता से किसी भी समय लिखित रूप में अपने कार्यकलाप से संबंधित ऐसी जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकेगा जो प्राधिकरण अपेक्षा करे ; या

(ख) किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलाप से संबंधित कोई जांच करने के लिए एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगा ; और

(ग) किसी सेवा प्रदाता की लेखाबहियों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए अपने अधिकारियों या कर्मचारियों में से किसी को निदेश दे सकेगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलापों के संबंध में कोई जांच की गई है वहां,–

(क) यदि ऐसा सेवा प्रदाता सरकार का कोई विभाग है तो सरकारी विभाग का प्रत्येक अधिकारी ;

(ख) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई कंपनी है तो प्रत्येक निदेशक,

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 9 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(ग) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई फर्म है तो प्रत्येक भागीदार, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(घ) ऐसा प्रत्येक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों का निकाय जिसका खंड (ख) और खंड (ग) में उल्लिखित व्यक्तियों में से किसी के साथ कारबार अनुक्रम में संबंध रहा था,

जांच करने वाले प्राधिकरण के समक्ष अपनी अभिरक्षा या नियंत्रण में की ऐसी सभी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज, जो ऐसी जांच की विषय-वस्तु से संबंधित है, पेश करने के लिए और प्राधिकरण को, यथास्थिति, उससे संबंधित, ऐसा विवरण या जानकारी भी जिसकी उससे अपेक्षा की जाए, ऐसे समय के भीतर जो विनिर्दिष्ट किया जाए, देने के लिए आबद्ध होगा ।

(3) प्रत्येक सेवा प्रदाता ऐसी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज रखेगा जो विहित किए जाएं ।

(4) प्राधिकरण को सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश देने की शक्ति होगी, जो वह सेवा प्रदाताओं द्वारा उचित कृत्यकरण के लिए आवश्यक समझे ।

13. निदेश देने की प्राधिकरण की शक्ति – (1) प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को, समय-समय पर, ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह आवश्यक समझे :

[1][परंतु धारा 12 की उपधारा (4) के अधीन या इस धारा के अधीन कोई निदेश, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट विषयों के सिवाय जारी नहीं किया जाएगा ।]

[2][**अध्याय 4**

अपील अधिकरण

14. अपील अधिकरण की स्थापना – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा,–

(क) (i) अनुज्ञापक या किसी अनुज्ञप्तिधारी के बीच ;

(ii) दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच ;

(iii) सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच,

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 10 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 11 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने के लिए, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण नामक अपील अधिकरण की स्थापना कर सकेगी :

परंतु इस खंड की कोई बात निम्नलिखित से संबंधित विषयों की बाबत लागू नहीं होगी–

(क) एकाधिकार व्यापारिक व्यवहार, अवरोधक व्यापारिक व्यवहार और अनुचित व्यापारिक व्यवहार जो एकाधिकार तथा अवराधेक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 (1969 का 59) की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन है ;

(ख) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) की धारा 9 के अधीन स्थापित उपभोक्ता विवाद प्रतितोष पीठ या किसी उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग के समक्ष चलाने योग्य किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता विवाद प्रतितोष का परिवाद ;

(ग) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 7ख की उपधारा (1) में निर्दिष्ट तार प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और उसका निपटारा करना ।

14क. विवाद के निपटारे के लिए आवेदन और अपील अधिकरण को अपील – (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या कोई व्यक्ति 14 के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए अपील अधिकरण को आवेदन कर सकेगा ।

(2) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन प्रत्येक अपील उस तारीख से, जिसको प्राधिकरण द्वारा दिए गए निदेश या किए गए आदेश या विनिश्चय की प्रति केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण या किसी व्यथित व्यक्ति को प्राप्त होती है तीस दिन के भीतर की जा सकेगी और वह ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में सत्यापित और ऐसी फीस के साथ होगी जो विहित

की जाए :

परंतु अपील अधिकरण उक्त अवधि के अवसान के पश्चात् भी किसी अपील को ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उस अवधि के भीतर इसके फाइल न किए जाने के पर्याप्त कारण थे ।

(4) अपील अधिकरण, उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन या उपधारा (2) के अधीन किसी अपील के प्राप्त होने पर, विवाद या अपील के पक्षकारों को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् उसके ऊपर ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जिसे वह ठीक समझे ।

(5) अपील अधिकरण, यथास्थिति, विवाद या अपील के पक्षकारों और प्राधिकरण को उसके द्वारा किए गए प्रत्येक आदेश की प्रति भेजेगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन या उपधारा (2) के अधीन की गई अपील पर उसके द्वारा यथासंभव शीघ्रता से कार्रवाई की जाएगी और उसके द्वारा, यथास्थिति, आवेदन या अपील की प्राप्ति से नब्बे दिन की अवधि के भीतर आवेदन या अपील का अंतिम रूप से निपटारा किए जाने का प्रयास किया जाएगा :

परंतु जहां ऐसे आवेदन या अपील का निपटारा उक्त नब्बे दिन की अवधि के भीतर नहीं किया जा सकता है वहां अपील अधिकरण उक्त अवधि के भीतर किसी आवेदन या अपील के निपटारा नहीं किए जाने के कारणों को लेखबद्ध करेगा ।

(7) अपील अधिकरण उपधारा (1) के अधीन किए गए किसी आवेदन में किसी विवाद या उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश या आदेश या विनिश्चय के विरुद्ध की गई अपील की वैधता या औचित्य या सत्यता का परीक्षण करने के प्रयोजन के लिए, स्वप्रेरणा से या अन्यथा ऐसे आवेदन या अपील के निपटारे से सुसंगत अभिलेखों को मंगाएगा और ऐसे आदेश करेगा, जो वह ठीक समझे ।

14ख. अपील अधिकरण की संरचना –(1) अपील अधिकरण अध्यक्ष और दो से अनधिक सदस्यों से मिलकर बनेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ।

(2) अपील प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन केन्द्रीय सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए,—

(क) अपील अधिकरण की अधिकारिता उसकी न्यायपीठों द्वारा प्रयोग की जा सकेगी ;

(ख) किसी न्यायपीठ का गठन अपील अधिकरण का अध्यक्ष ऐसे अधिकरण के एक या दो सदस्यों से करेगा, जिसे अध्यक्ष ठीक समझे ;

(ग) अपील अधिकरण की न्यायपीठें सामान्यतया नई दिल्ली और ऐसे अन्य स्थानों पर अधिविष्ट होंगी, जो केन्द्रीय सरकार, अपील अधिकरण के अध्यक्ष के परामर्श से अधिसूचित करे ;

(घ) केन्द्रीय सरकार उन क्षेत्रों को अधिसूचित करेगी जिनके संबंध में अपील अधिकरण की प्रत्येक न्यायपीठ अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकेगी ।

(4) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण का अध्यक्ष, ऐसे अधिकरण के किसी सदस्य को एक न्यायपीठ से दूसरी न्यायपीठ में स्थानान्तरित कर सकेगा ।

(5) यदि किसी मामले या विषय की सुनवाई के किसी प्रक्रम पर अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को यह प्रतीत होता है कि मामला या विषय ऐसी प्रकृति का है कि वह दो सदस्यों वाली न्यायपीठ द्वारा सुना जाना चाहिए, तो ऐसा मामला या विषय अध्यक्ष द्वारा ऐसी न्यायपीठ को स्थानान्तरित किया जा सकेगा, जिसे अध्यक्ष ठीक समझे ।

14ग. अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं — (1) अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति तभी अर्हित होगा जब वह,—

(क) अध्यक्ष की दशा में, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है या रहा है ;

(ख) सदस्य की दशा में, जिसने भारत सरकार में सचिव का पद या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार में कोई समतुल्य पद दो वर्ष से अन्यून अवधि के लिए धारण किया हो या ऐसा व्यक्ति जो प्रौद्योगिकी, दूर-संचार उद्योग, वाणिज्य या प्रशासन के क्षेत्र में विशेष अनुभव रखता हो ।

14घ. पदावधि – अपील अधिकरण का अध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य ऐसी तारीख से जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए उस रूप में पद धारण करेगा :

परंतु कोई अध्यक्ष या अन्य सदस्य,–

(क) अध्यक्ष की दशा में, सत्तर वर्ष की आयु ;

(ख) किसी अन्य सदस्य की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु,

प्राप्त करने के पश्चात् पद धारण नहीं करेगा ।

14ङ सेवा के निबंधन और शर्तें – अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं :

परंतु अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य के वेतन और भत्तों या सेवा के अन्य निबंधन और शर्तों में नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

14च. रिक्तियां – यदि अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य के पद में अस्थायी अनुपस्थिति से भिन्न किसी अन्य कारण से कोई रिक्ति किसी भी कारण हो जाती है तो केन्द्रीय सरकार किसी अन्य व्यक्ति को उस रिक्ति को भरने के लिए इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नियुक्त करेगी और कार्यवाही उस प्रक्रम से, जब रिक्ति भर दी जाती है, अपील अधिकरण के समक्ष चालू रखी जा सकेंगी ।

14छ. पद से हटाया जाना और त्यागपत्र – (1) केन्द्रीय सरकार अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को पद से हटा सकेगी जो,–

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया हो ; या

(ख) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अंतर्वलित है ; या

(ग) अध्यक्ष या सदस्य के रूप में कार्य करने में शारीरिक या मानसिक रूप से अयोग्य हो गया है ; या

(घ) जिसने ऐसा वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे अध्यक्ष या किसी सदस्य के उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ; या

(ङ) जिसने अपने पद का ऐसा दुरुपयोग किया है जिससे उसके पद पर बने रहने से लोक हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को उस उपधारा के खंड (घ) या खंड (ङ) में विनिर्दिष्ट आधारों पर उसके पद से तभी हटाया जाएगा जब उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त निर्दिष्ट किए जाने पर, ऐसी प्रक्रिया के अनुसार, जिसे वह इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, जांच किए जाने पर यह रिपोर्ट दे दी हो कि अध्यक्ष या सदस्य को ऐसे आधार या आधारों पर हटा दिया जाना चाहिए ।

(3) केन्द्रीय सरकार उपधारा (2) के अधीन अपील अधिकरण के ऐसे अध्यक्ष या किसी सदस्य को जिसकी बाबत उच्चतम न्यायालय को निर्देश किया गया है तभी निलंबित कर सकेगी जब केन्द्रीय सरकार ने ऐसे निर्देश पर उच्चतम न्यायालय से रिपोर्ट प्राप्त होने पर आदेश पारित किया हो ।

14ज. अपील अधिकरण के कर्मचारिवृन्द – (1) केन्द्रीय सरकार अपील अधिकरण के लिए ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी जो वह ठीक समझे ।

(2) अपील अधिकरण के अधिकारी और कर्मचारी, अध्यक्ष के साधारण अधीक्षण के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करेंगे ।

(3) अपील अधिकरण के अधिकारियों और कर्मचारी के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

14झ. न्यायपीठों के बीच कार्य का वितरण – जहां न्यायपीठों का गठन हो गया है, वहां अपील अधिकरण का अध्यक्ष, समय-समय पर अधिसूचना द्वारा, न्यायपीठों के बीच अपील अधिकरण के कार्य के वितरण का उपबंध कर सकेगा और मामलों का भी उपबंध कर सकेगा जिनको प्रत्येक न्यायपीठ द्वारा निपटाया जाएगा ।

14ञ. मामलों को अन्तरण करने की अध्यक्ष की शक्ति – किसी भी पक्षकार के आवेदन पर और पक्षकारों को सूचना देने के पश्चात् तथा पक्षकारों में से ऐसे पक्षकारों की जिनकी वह सुनवाई करना चाहता है, सुनवाई करने के पश्चात् या ऐसी सूचना दिए बिना स्वप्रेरणा से, अध्यक्ष एक न्यायपीठ के समक्ष लंबित किसी मामले को निपटाए जाने के लिए किसी अन्य न्यायपीठ में अंतरण कर सकेगा ।

14ट. बहुमत द्वारा विनिश्चय किया जाना – यदि किसी ऐसी न्यायपीठ, जो दो सदस्यों से मिलकर बनी है, के सदस्यों में किसी प्रश्न पर मतभेद है, तो वे ऐसे प्रश्नों का, जिन पर उनमें मतभेद है, उल्लेख करेंगे और अपील अधिकरण के अध्यक्ष को निर्दिष्ट करेंगे जो स्वयं प्रश्न या प्रश्नों पर सुनवाई करेगा और ऐसे प्रश्न या प्रश्नों का उस बहुमत के, जिन्होंने मामले की सुनवाई की है जिसके अन्तर्गत वे भी हैं जहां इसे प्रथम बार सुना गया था, अनुसार विनिश्चय किया जाएगा ।

14ठ. सदस्यों आदि का लोक सेवक होना – अपील अधिकरण का अध्यक्ष, सदस्य और अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी भारतीय दंड संहिता, (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक होंगे ।

14ड. लंबित मामलों का अन्तरण – इस अधिनियम के अधीन अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले अधिकरण से समक्ष विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए लंबित सभी आवेदन उस तारीख को ऐसे अधिकरण को अन्तरित हो जाएंगे :

परंतु अध्याय 4 के उपबंधों के अधीन न्यायनिर्णीत किए जाने वाले सभी विवाद जो दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के ठीक पूर्व विद्यमान थे तब तक अधिकरण द्वारा उस अध्याय में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार न्यायनिर्णीत किए जाते रहेंगे जब तक कि इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की स्थापना नहीं हो जाती :

परंतु यह और कि प्रथम परंतुक में निर्दिष्ट सभी मामले प्राधिकरण द्वारा अपील अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसके स्थापित किए जाने पर अन्तरित हो जाएंगे ।

14ढ. अपीलों का अन्तरण – (1) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से ठीक पूर्व उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित सभी अपीलें, अपील अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसकी स्थापना पर अन्तरित हो जाएंगी ।

(2) जहां उच्च न्यायालय से उपधारा (1) के अधीन कोई अपील अन्तरित की जाती है, वहां –

(क) उच्च न्यायालय, ऐसे अन्तरण के पश्चात् यथाशीघ्र ऐसी अपील के अभिलेख अपील अधिकरण को अग्रेषित करेगा ; और

(ख) अपील अधिकरण, ऐसे अभिलेखों के प्राप्त होने पर, ऐसी

अपीलों का उस प्रक्रम से, जिस पर वह ऐसे अन्तरण से पूर्व थे या किसी अन्य पूर्वतर प्रक्रम से या नए सिरे से, जो भी अपील अधिकरण ठीक समझे, कार्रवाई करेगा ।

15. सिविल न्यायालय की अधिकारिता न होना – किसी सिविल न्यायालय की ऐसे किसी वाद या कार्यवाहियों को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी जिनकी बाबत अपील अधिकरण इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अवधारित करने के लिए सशक्त है और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकरण द्वारा व्यादेश प्रदान नहीं किया जाएगा ।

16. अपील अधिकरण की प्रक्रिया और शक्तियां – (1) अपील अधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में अधिकथित प्रक्रिया द्वारा आबद्ध नहीं होगा, किन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करेगा और इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए अपील अधिकरण को स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी ।

(2) अपील अधिकरण को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित विषयों की बाबत वही शक्तियां होंगी, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय में निहित हैं, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा उसकी शपथ पर परीक्षा करना ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 123 और धारा 124 के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज या ऐसे अभिलेख की प्रति या दस्तावेज मांगना ;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ;

(च) अपने विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करना ;

(छ) किसी आवेदन को त्रुटि के कारण खारिज करना या उसका एकपक्षीय रूप से विनिश्चय करना ; और

(ज) त्रुटि के कारण किसी आवेदन के खारिज करने के आदेश को या अपने द्वारा एकपक्षीय रूप से पारित किए गए किसी आदेश को अपास्त करना ; और

(झ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए ।

(3) अपील अधिकरण के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता, (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाहियां समझी जाएंगी और अपील अधिकरण दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

17. विधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार – आवेदक या अपीलकर्ता अपील अधिकरण के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए या तो स्वयं हाजिर हो सकेगा या एक या अधिक चार्टर्ड अकाउंटेंट या कंपनी सचिवों या लागत अकाउंटेंटों को या विधि व्यवसायों को या अपने अधिकारियों में से किसी अधिकारी को प्राधिकृत कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए,–

(क) "चार्टर्ड अकाउंटेंट" से चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 (1949 का 38) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथा परिभाषित ऐसा चार्टर्ड अकाउंटेंट अभिप्रेत है, जिससे उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किया है ;

(ख) "कंपनी सचिव" से कंपनी सचिव अधिनियम, 1980 (1980 का 32) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ग) में यथा परिभाषित ऐसा कंपनी सचिव अभिप्रेत है, जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किया है ;

(ग) "लागत अकाउंटेंट" से लागत और संकर्म अकाउंटेंट

अधिनियम, 1959 (1959 का 23) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथा परिभाषित ऐसा कोई लागत अकाउंटेंट अभिप्रेत है, जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किया है ;

(घ) "विधि व्यवसायी" से कोई अधिवक्ता, वकील या उच्च न्यायालय का कोई अटार्नी अभिप्रेत है और जिसके अन्तर्गत व्यवसायरत प्लीडर भी है ।

18. उच्चतम न्यायालय को अपील – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण के किसी आदेश के विरुद्ध जो अन्तर्वर्ती आदेश नहीं है, उस संहिता की धारा 100 में निर्दिष्ट किसी एक या अधिक आधारों पर उच्चतम न्यायालय को अपील होगी ।

(2) अपील अधिकरण द्वारा पक्षकारों की सहमति से किए गए किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, उस विनिश्चय या आदेश की तारीख से जिसके विरुद्ध अपील की गई है, नब्बे दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परन्तु उच्चतम न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय से अपील करने में पर्याप्त हेतुक से निवारित हो गया था तो नब्बे दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

19. अपील अधिकरण द्वारा पारित आदेश का डिक्री के रूप में निष्पाद्य होना – (1) इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण द्वारा पारित कोई आदेश, अपील अधिकरण द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में निष्पाद्य होगा और इस प्रयोजन के लिए अपील अधिकरण को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी अपील अधिकरण, उसके द्वारा किए गए किसी आदेश को स्थानीय अधिकारिता रखने वाले किसी सिविल न्यायालय को संप्रेषित कर सकेगा और ऐसा सिविल न्यायालय वह आदेश इस प्रकार निष्पादित करेगा मानो वह उस न्यायालय द्वारा दी गई डिक्री हो ।

20. अपील अधिकरण के आदेश का पालन करने में जानबूझकर की गई असफलता के लिए शास्ति – यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर अपील अधिकरण के आदेश का पालन करने में असफल रहता है तो वह जुर्माने से जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में, जुर्माने से जो दो लाख रुपए तक हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, अतिरिक्त जुर्माने से जो ऐसे प्रत्येक दिन के लिए जिसके दौरान ऐसा व्यतिक्रम जारी रहता है, अतिरिक्त जुर्माने से जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।]

अध्याय 5

वित्त, लेखा और संपरीक्षा

21. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा विधि द्वारा इस निमित्त किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, प्राधिकरण को ऐसी धनराशियों का अनुदान जो अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों और प्रशासनिक व्ययों के लिए, जिनके अन्तर्गत प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय या उनके संबंध में वेतन, भत्ते और पेंशन हैं, अपेक्षित हैं, दे सकेगी ।

22. निधि – (1) भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण साधारण निधि के नाम से एक निधि का गठन किया जाएगा और उसमें निम्नलिखित जमा किए जाएंगे, अर्थात् :–

(क) प्राधिकरण द्वारा इस अधिनियम के अधीन प्राप्त सभी अनुदान, फीस और प्रभार ; और

(ख) प्राधिकरण द्वारा ऐसे अन्य स्रोतों से, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विनिश्चित किए जाएं, प्राप्त सभी राशियां ।

(2) निधि का उपयोजन निम्नलिखित की पूर्ति के लिए किया जाएगा, अर्थात् :–

(क) अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा प्रशासनिक व्यय, जिसके अंतर्गत प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय या उनके संबंध में वेतन, भत्ते और पेंशन हैं ; और

(ख) इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत उद्देश्यों के संबंध में और प्रयोजनों के लिए व्यय ।

23. लेखा और संपरीक्षा – (1) प्राधिकरण, उचित लेखे और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा तथा लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) प्राधिकरण के लेखाओं की संपरीक्षा, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं, की जाएगी और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय प्राधिकरण द्वारा भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

[1][**स्पष्टीकरण** – शंकाओं के निराकरण के लिए यह घोषित किया जाता है कि प्राधिकरण द्वारा, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) और उपधारा (2) तथा धारा 13 के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में किए गए विनिश्चय, अपील अधिकरण को अपील योग्य मामले होने के कारण, इस धारा के अधीन संपरीक्षा के अधीन नहीं होंगे ।]

(3) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के, और प्राधिकरण के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के, उस संपरीक्षा के संबंध में वही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो साधारणतया, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में हैं, और उसे विशिष्टतया, बहियां, लेखा से संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागजपत्र पेश किए जाने की मांग करने और प्राधिकरण के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित प्राधिकरण के लेखे, उसकी संपरीक्षा रिपोर्ट के साथ प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित किए जाएंगे और वह सरकार उन्हें संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

24. विवरणियां, आदि का केन्द्रीय सरकार को दिया जाना – (1) प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार को ऐसे समय पर और ऐसे प्ररूप में, तथा ऐसी रीति से जो विहित की जाए या जो केन्द्रीय सरकार निदेश दे, दूर-संचार सेवाओं के संवर्धन और विकास के लिए किसी प्रस्थापित या विद्यमान कार्यक्रम के संबंध में ऐसी विवरणियां और विवरण तथा विशिष्टियां देगा जो

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 12 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अपेक्षा करे ।

(2) प्राधिकरण, प्रत्येक वर्ष में एक बार वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर जो विहित किया जाए, तैयार करेगा जिसमें पूर्ववर्ती वर्ष के दौरान उसके क्रियाकलापों का संक्षिप्त विवरण होगा और रिपोर्ट की प्रतियां केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित की जाएंगी ।

(3) उपधारा (2) के अधीन प्राप्त रिपोर्ट की एक प्रति, प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

अध्याय 6

प्रकीर्ण

25. निदेश देने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, समय-समय पर, प्राधिकरण को ऐसे निदेश दे सकेगी जिन्हें वह भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के हित में आवश्यक समझे ।

(2) पूर्वगामी उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्राधिकरण, अपनी शक्तियों के प्रयोग या अपने कृत्यों के पालन में, नीति के प्रश्नों पर ऐसे निदेशों से आबद्ध होगा जो केन्द्रीय सरकार उसे समय-समय पर लिखित रूप में दे :

परन्तु इस उपधारा के अधीन, प्राधिकरण को कोई निदेश दिए जाने के पूर्व, जहां तक साध्य हो, अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाएगा ।

(3) कोई प्रश्न नीति का है या नहीं, इस बारे में केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

26. प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों और कर्मचारियों का लोक सेवक होना – प्राधिकरण के सभी सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी, जब वे इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में कार्य कर रहे हों या जब उनका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित हो, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

27. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को किसी ऐसे मामले की बाबत जिसका अवधारण करने के लिए इस अधिनियम द्वारा

या उसके अधीन प्राधिकरण सशक्त है, अधिकारिता नहीं होगी ।

28. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही, केन्द्रीय सरकार के या प्राधिकरण के अथवा केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं होगी ।

29. प्राधिकरण के निदेशों के उल्लंघन के लिए शास्ति – (1) यदि कोई व्यक्ति प्राधिकरण के निदेशों का अतिक्रमण करता है तो ऐसा व्यक्ति जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में जुर्माने से, जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, अतिरिक्त जुर्माने से, जो ऐसे प्रत्येक दिन के लिए जिसके दौरान व्यतिक्रम जारी रहता है, दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

30. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम में उपबंधित किसी दंड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध, उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का

दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए,–

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम है ; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

31. सरकारी विभागों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है वहां उक्त विभाग का प्रधान उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा जब तक कि वह यह साबित नहीं कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक्, तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध विभाग के प्रधान से भिन्न किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

32. धन और आय पर कर से छूट – धन-कर अधिनियम, 1957 (1957 का 27), आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) या धन, आय, लाभ या अभिलाभ पर कर से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण अपने व्युत्पन्न धन, आय, लाभ या अभिलाभ की बाबत धन-कर, आय-कर, या किसी अन्य कर का संदाय करने का दायी नहीं होगा ।

33. प्रत्यायोजन – प्राधिकरण, साधारण या विशेष लिखित आदेश द्वारा, प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसी शर्तों के, यदि कोई हों, अधीन रहते हुए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों का

(अध्याय 4 के अधीन विवाद का निपटारा करने और धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति को छोड़कर) जो वह आवश्यक समझे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

34. अपराधों का संज्ञान – (1) कोई भी न्यायालय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान प्राधिकरण द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग के न्यायालय से अवर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

35. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 5 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें,

[1][(कक) धारा 5 की उपधारा (6क) के अधीन अंशकालिक सदस्यों को संदेय भत्ते ;]

(ख) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अध्यक्ष की शक्तियां और कृत्य ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन जांच करने की प्रक्रिया ;

[1][(गक) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;]

(घ) ऐसी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का प्रवर्ग जिनका धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन रखा जाना अपेक्षित है ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 13 द्वारा अंतःस्थापित ।

[1][(घक) धारा 14क की उपधारा (3) के अधीन प्ररूप, उसके सत्यापन की रीति और फीस ;

(घख) धारा 14ङ के अधीन अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(घग) धारा 14ज की उपधारा (3) के अधीन अपील अधिकरण के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;

(घघ) धारा 16 की उपधारा (2) के खंड (झ) के अधीन विहित की जाने के लिए अपेक्षित सिविल न्यायालय की कोई अन्य शक्ति ;]

(ङ) वह अवधि जिसके भीतर धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन किया जाएगा ;

(च) वह रीति जिससे धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के लेखे रखे जाएंगे ;

(छ) वह समय जिसके भीतर और वह प्ररूप जिसमें तथा वह रीति जिससे धारा 24 की उपधारा (1) और उपधारा (2) के अधीन केन्द्रीय सरकार को विवरणियां और रिपोर्टें दी जाएगी ;

(ज) कोई अन्य विषय, जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए अथवा जिसकी बाबत नियमों द्वारा उपबंध किया जाना है ।

36. विनियम बनाने की शक्ति – (1) प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, ऐसे विनियम बना सकेगा जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों से संगत हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों का समय तथा स्थान और ऐसे अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत कार्य करने के लिए आवश्यक

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 13 द्वारा अंतःस्थापित ।

गणपूर्ति भी है ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों में कार्य करना ;

[1]* * * * * * *

(घ) वे विषय जिनकी बाबत धारा 11 की उपधारा (1) के [2][खंड (ख) के उपखंड (vii) के अधीन] प्राधिकरण द्वारा रजिस्टर रखा जाएगा ;

(ङ) फीस का उद्धरण और ऐसी अन्य अपेक्षाएं अधिकथित करना जिनके पूरा करने पर धारा 11 की उपधारा (1) के [2][खंड (ख) के उपखंड (viii) के अधीन] रजिस्टर की प्रति प्राप्त की जा सकेगी ;

(च) धारा 11 की उपधारा (1) के [2][खंड (ग) के अधीन] फीस और अन्य प्रभारों का उद्धरण ।

37. नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और प्रत्येक विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

38. कतिपय विधियों का लागू होना – इस अधिनियम के उपबंध, भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) और भारतीय बेतार तार यांत्रिकी अधिनियम, 1933 (1933 का 17) के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 14 द्वारा लोप किया गया ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

और विशिष्टतया इस अधिनियम की कोई बात किसी ऐसी अधिकारिता, शक्तियों और कृत्यों पर प्रभाव नहीं डालेगी जिनका प्रयोग या पालन ऐसे प्राधिकरण की अधिकारिता के भीतर आने वाले किसी क्षेत्र के संबंध में तार प्राधिकरण द्वारा किया जाना अपेक्षित है ।

39. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उस कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

40. निरसन और व्यावृत्ति – (1) भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अध्यादेश, 1997 (1997 का अध्यादेश संख्यांक 11) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते भी, उक्त अध्यादेश के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी ।

Cover iii

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Cover iV

पी एल डी (सी. डी)-2-2019
भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in